महापुरुष धन्यकुमार

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में अवन्ती नाम का देश है। इस देश में **विशाला** नाम की नगरी है। इस नगरी का दूसरा नाम उज्जयिनी नगरी भी था। वहाँ **वसुपाल** नाम का राजा राज्य करता था। वह बहुत धार्मिक तथा पापभीरू था। इसकी **वसुमती** नाम की पटरानी थी।

उज्जयिनी में **श्रीदत्त** नाम का एक सेठ रहता था। उस सेठ की **देवश्री** नाम की पत्नी थी। श्रीदत्त सेठ के धन–धान्य आदि खूब थे, पुण्योदय से वह भोगों को भोगता था, **पुण्य से वस्तुएं सुलभ होती हैं, पाप से दुर्लभ होती हैं**, वही कहा है –

"कामा दुर्लभाश्च पापिनां पापपाकतः।"

अर्थः–पाप के उदय के कारण से मनुष्यों को इच्छानुसार भोग दुर्लभ होते हैं।

इस साधन-सम्पन्न सेठ के (1) देवप्रिय (2) देविल (3) देवनन्दन (4) देवचन्द्र (5) धनद (6) धनेश्वर (7) धनपालक ये सात पुत्र पहले से थे। तथा आठवाँ पुत्र सौधर्म नाम के पहले स्वर्ग से देवश्री के गर्भ में आया था। जब वह गर्भ में आया ,तभी उसके पुण्य के उदय से देवश्री के मन में इच्छाएँ होती थीं कि मैं जिनेन्द्र भगवान की आराधना, उपासना करूँ, दान दूँ, बहरे, अन्धे, अपाहिज जीवों पर दया भाव रखूँ, उनका उपकार करूँ।

देवश्री ने अपनी शक्ति के अनुसार पूजन-पाठ किये, दान दिये व दुःखी जीवों की मदद कर उनका उपकार किया। फिर एक दिन शुभ नक्षत्र में एक सुंदर बालक को जन्म दिया। क्योंकि–

"पुण्यवतो हि जीवस्य सर्वं भद्रं समापयेत्।"

अर्थः—पुण्यात्मा जीवों को सभी उत्तम वस्तुओं की प्राप्ति होती है।

यह पुत्र वास्तव में पुण्यशाली था। जब उसकी नाल गाड़ने के लिए गड्ढा खोदा गया, तब रत्नों से भरी कढ़ाई निकली। तथा उसके मज्जन (स्नान) के पानी को बहाने के लिए दूसरा गड्ढा खोदा गया, तब रत्नों से भरा एक कलश निकला।

श्रीदत्त इस आश्चर्य को देखकर उस धन को लेकर राजा के पास गया। कहने लगा— मुझे पुत्र और रत्न दोनों की प्राप्ति हुई है। इस धन पर आपका अधिकार है। उसे स्वीकार कीजिए।

राजा ने कहा— यह धन पुत्र के पुण्य से प्राप्त हुआ है। इसे उसके जन्मोत्सव पर खर्च करो। मेरी ओर से भी धन स्वीकार करो।

पिता श्रीदत्त ने पुत्र के जन्म का बड़ा उत्सव किया। उत्तम दान देकर याचकों को संतुष्ट किया। घर में उत्सव के बाजे बजवाये। विद्वानों का सम्मान किया। मंदिर में उत्तम वस्तुएँ दान कीं। आगन्तुकों को अच्छे उपहार दिये।

वह बालक जब से गर्भ में आया था, उसी दिन से घर में धन बढ़ने लगा था, इसलिए तथा बालक का सौन्दर्य देखकर लोग माता-पिता को "आप धन्य हो" "आप धन्य हो" ऐसा कहकर उनकी प्रशंसा करते थे, इसलिए उन्होंने उसका नाम "धनकुमार" तथा "धन्यकुमार" रखा। धन्यकुमार कामदेव के समान सुंदर था, उसकी बुद्धि तीक्ष्ण थी, उसके संस्कार ज्ञानीजनों जैसे थे। बचपन से ही चतुर था। प्रतिदिन मंदिर मे जाता था। गरीबों की मदद करता था। धीरे—धीरे सबका प्यार पाता हुआ वह बड़ा हो रहा था।

धन्यकुमार जब आठ वर्ष का हुआ, तब उसे पूजनविधि करके पढ़ने के लिए आश्रम में भेज दिया। उसने थोड़े ही समय में अक्षर सीख लिए। क्योंकि

"प्रज्ञावतां किमप्यस्ति विषमं भवितात्मनाम्।"

अर्थः– बुद्धिमान पुण्यवान मनुष्य को क्या कोई भी कार्य कठिन है? अर्थात् नहीं है।

पुण्य कर्म के प्रभाव से उसने थोड़े ही समय में सभी विद्याएँ सीख ली।

धन्यकुमार सभी विद्याएँ सीखकर आश्रम से लौटकर आया। उज्जयिनी में धन्यकुमार के सौन्दर्य, रूप, गुण, विद्याओं की कीर्ति फैल गई ।

फूलों के समान अत्यन्त कोमल तथा अत्यन्त सुन्दर उस धन्यकुमार को जो भी सेठ देखता था, वह अपने मन में यही विचार करता था कि इसे अपनी पुत्री ब्याह दूँ।

उसका नरभव समस्त पुण्य के उदय से युक्त होता हुआ सुशोभित हो रहा था। वह पुण्य का दर्पण था। धन्यकुमार और उसकी दिव्यता को देखकर लगता था कि पुण्य का फल ऐसा होता है।

धन्यकुमार स्वभाव से धर्मात्मा था, मंदिर जी जाना, वहाँ अधिक से अधिक समय तक शांतभाव से रूकना, आत्मचिंतन, मनन करना, भगवान् की पूजन-भक्ति करना उसे प्रिय थे। वह सदा सोचता था–

अहमेक्को खलु सुद्धो णाणदंसणमइओ सदारूवी ।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्तं पि।।

अर्थः– कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणु मात्र नहीं अरें! मैं एक शुद्ध सदा अरूपी ज्ञान दृग हूँ यथार्थ से।

मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ ज्ञानदर्शन मय सदा अरूपी हूँ , इसके अलावा अन्य कुछ परमाणु मात्र भी मेरा नहीं है।

इस प्रकार विचार कर वह सदा निर्लोभी रहता था। वह हृदय से दयालु था और जरूरतमंदों की सेवा करता था। बुद्धि से प्रखर था, कठिन से कठिन समस्याओं के समाधान भी चुटकी में कर देता था। वह शरीर से कोमल तथा सुन्दर था। इन्हीं विशेषताओं से उसकी कीर्ति चारों ओर फैल गई ।

उसके सातों बड़े भाई उसकी प्रसिद्धि से चिढ़ते थे। वे उसके दान देने से खफा थे। वे उससे द्वेष करने लगे थे।

एक दिन उन्होंने माता-पिता से कहा– यह छोटा धन्यकुमार अब बड़ा हो चुका है, उसे व्यापार में क्यों नहीं लगाते?

यह आवाराओं की तरह दिनभर इधर से उधर गली-गली घूमता रहता है। यह निठल्लों के साथ रहता है। इससे इसका जीवन बर्बाद हो रहा है। बैठे-ठाले खाता रहे यह तो ठीक है, परन्तु यह तो हमारी मेहनत की गाढ़ी कमाई को दिनभर दान में उड़ाता है। कमायें हम और हमारा धन लुटाकर नाम कमाये यह– यह तो अनीति है। इसे व्यापार में लगाइए, नहीं तो और बिगड़ जायेगा।

पिता ने कहा– पुत्रों, यह आपका सबसे छोटा भाई है। जब तक यह बुद्धि से प्रौढ और शरीर से दृढ़ न हो जाये, तब तक इसे व्यापार में न लगाया जाये तो ठीक रहेगा।

इसके बाद उन सात में से एक भाई बोला–

यह अब इतना भी कच्चा नहीं है कि इसे व्यापार में न लगाया जा सके। घर में रहने से यह कमजोर ही रहेगा। इसे व्यापार-धन्धे में लगाइए। धीरे-धीरे सब तरह से मजबूत हो जायेगा। पिता ने बच्चों के अभिप्राय को जानकर धन्यकुमार को

व्यापार में लगाने का निर्णय किया। दूसरे दिन प्रातः स्नान कर मन्दिर से लौटने पर धन्यकुमार को पाँच सौ दीनार दिये। साथ में एक सेवक दिया। सेवक से कहा– यह जो भी व्यापार करे, इसे करने दिया जाय, टोकना मत। जो भी व्यापार करें, उसी में इसका भाग्य फलेगा, क्योंकि **भाग्य व्यापार-विशेष से नहीं फलता अपितु पुण्य से फलता है। व्यापार परिश्रम से नहीं पुण्य से चलता है।** परिश्रम तो हर कोई करता है, परन्तु फला उसी का है, जिसके पास पुण्य होता है।

माता ने चन्दन का टीका आदि लगाकर उसका अभिनन्दन किया। आशीर्वाद देकर उसे बिदा किया। धन्यकुमार घर से निकल कर जब बाजार आया तो उसे लकड़ियों से भरी एक बैलगाड़ी दिखी। उसने गाडीवाले के पास जाकर कहा–

हे गाड़ीवाले भाई, क्या बैलगाड़ी के साथ लकड़ियाँ बेचोगे?

गाडीवाला–हे सज्जन बालक! मैं सिर्फ लकड़ियाँ बेचता हूँ। यह मेरा व्यापार है, परन्तु अच्छे दाम मिल जाये तो मुझे बैलगाड़ी सहित लकड़ियाँ बेचने में कोई दिक्कत भी नहीं है।

धन्यकुमार– बताइये, कितने दाम देने होंगे?

गाड़ीवाला– आप समझदार हो, जो उचित लगे वह बता दीजिए। हमें सही लगेगा तो हम बेचेंगे, नहीं तो नहीं बेचेंगे।

धन्यकुमार– पाँच सौ दीनार देंगे। हमारे पास इससे ज्यादा नहीं है। गाड़ीवाले ने मन में सोचा इतने में तो कितनी ही बैलगाड़ियाँ खरीद सकता हूँ। आज शुभ दिन आया है। पुण्य का उदय आया है। दरिद्रता दूर हो जायेगी। हाथ आयी लक्ष्मी को क्यों छोड़ूँ? यह सोच उसने कहा–

ठीक है, लीजिए गाड़ी, बैल, लकड़ियाँ, सब आप को दिए।

धन्यकुमार ने उसे पाँच सौ दीनार दिये और बदले में बैलगाड़ी सहित लकड़ियाँ खरीद कर वहीं रूका रहा। थोड़ी देर बाद धन्यकुमार के सामने भेड़ ले जाता हुआ एक मनुष्य निकला। धन्यकुमार ने उससे पूछा–

हे महाशय! क्या भेड़ बेचने लाये हो?

भेड़वाला– हे भद्र, भेड़-बकरियाँ मेरी रोजी रोटी हैं , पर परिस्थिति ऐसी आन पड़ी है कि आज मुझे एक भेड़ बेचनी पड़ रही है।

धन्यकुमार– हे भेड़वाले इसकी क्या कीमत लोगे?

भेड़वाला– हे भद्र आप बता दीजिए क्या देंगे।

धन्यकुमार– मेरे पास इस समय यह बैलगाड़ी है, और इसमें भरी लकड़ियाँ हैं, मैं भेड़ के बदले आपको दो बैल, एक यह बैलगाड़ी और इसमें भरी लकड़ियाँ दे सकता हूँ। आपको उचित लगे तो यह सब लीजिए और भेड़ दे दीजिए।

भेड़वाले ने सोचा– एक भेड़ के बदले दो बैल, एक बैलगाड़ी और इतनी सारी लकड़ियाँ मिल रही है तो सौदा बुरा नहीं है। इस भेड़ को इनके बदले देने में मेरा ही कई गुणा लाभ है। उसने धन्यकुमार से कहा–

हे भद्र, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। लीजिए यह भेड़ और यह सब सामान दे दीजिए। धन्यकुमार भेड़ खरीद कर वहीं खड़ा रहा। इतने में एक घोर दरिद्र व्यक्ति सिर पर खाट के चार पाये और चार शेष लकडियाँ लेकर पसीने से भीगे शरीर लिये आ रहा था। धन्यकुमार ने उससे पूछा–

हे श्रीमान्, आप दुःखी दिख रहे हो, क्या खाट की ये आठ लकड़ियाँ बेचने लाये हो?

उस खाटवाले ने कहा–

हे कुमार, हाँ, खाट की इन आठ लकड़ियों को बेचने के लिए ही लाया हूँ। पर चिंता यही है कि पुरानी खाट की इन आठ लकड़ियों को कौन खरीदेगा? बच्चे घर में भूखे हैं, कोई खरीद सका तो बेचकर प्राप्त धन से अनाज खरीदूँगा। बच्चों को खाना खिलाऊँगा। क्या आप खरीदना पसंद करोगे?

धन्यकुमार ने कहा–

श्रीमान् मैं खरीदना चाहता हूँ, पर आपको देने के लिए मेरे पास धन नहीं है। सिर्फ यह एक भेड़ है। उचित लगे तो भेड़ के बदले खाट की ये आठ लकड़ियाँ मुझे दीजिए।

उस खाटवाले ने सोचा– बच्चों को जीवनभर दूध नसीब नहीं हुआ। यदि भेड़ ले लूँ तो उनके लिए दूध की व्यवस्था हो जायेगी। इसलिए यह सौदा बुरा नहीं है। बच्चे और पत्नी भी खुश हो जायेंगे घर में भेड़ देखकर। यह सोच उसने धन्यकुमार से कहा–

लीजिए कुमार ये आठ लकड़ियाँ और भेड़ दीजिए।

धन्यकुमार ने वैसा ही किया। उसे भेड़ दे दी, खाट की आठ लकड़ियाँ ले लीं।

सेवक धन्यकुमार के व्यापार में नुकसान ही नुकसान देख रहा था, परन्तु स्वामी के आदेश के कारण मन में कुढ़ता हुआ भी चुप था। धन्यकुमार ने सेवक से कहा–

हे आज्ञापालक! आज का व्यापार पूर्ण हो गया है। चलो घर चलते हैं।

सेवक बोला– जो आज्ञा स्वामी।

इस तरह वे दोनों पाँच सौ दीनार के बदले खाट की पुरानी जीर्णशीर्ण आठ लकडियाँ लेकर घर आये।

देवप्रिय आदि सातों पुत्र भी अपना–अपना व्यापार कर घर आ चुके थे। सेवक के पास पुरानी खाट की आठ लकड़ियाँ देखकर सबने माथा पकड़ लिया। उन्होंने सोचा यह तो हमें बर्बाद करके ही मानेगा। देखो ना, पाँच सौ दीनार के बदले पुरानी खाट की आठ लकड़ियाँ लाया है। यह कितने घाटे का सौदा है।

परन्तु माँ देवश्री ने धन्यकुमार की द्वार पर आरती उतारी, धन्यकुमार से उन आठ लकड़ियों को आँगन के बीच में इस तरह से रखवाया मानो लक्ष्मी का निधान रखवा रही हो।

इसके बाद धन्यकुमार ने माता-पिता, भाइयों के चरण छुए। सब भाई मुँह फेरकर खड़े हो गये। सोचने लगे– इसे आशीर्वाद देना मतलब इसे ज्यादा बर्बादी का आशीर्वाद देना है।

परन्तु माँ ने आशीर्वाद दिया। कहा– बेटा, तू अमर रहे, तेरा यश बढ़ता रहे। पिता भी प्रसन्न थे।

देवप्रिय आदि सातों भाई विचार करने लगे कि देखो माता-पिता भी पक्षपाती हो रहे हैं। हम इतना कमाकर लाते हैं, हमारी आरती कभी नहीं उतारी। यह धन बर्बाद करके आया है तो भी इसकी आरती उतारी जा रही है। इसके स्थान पर हममें से कोई नुकसान करता तो पिताजी हमें सौ भाषण देते। नाराज हो जाते। यह नुकसान करके आया है, फिर भी प्रसन्न हो रहे हैं। एक ही कोख से जन्म लेनेवालों से भेदभाव क्यों? उनके लिए तो वही प्रिय है, चाहे नुकसान करके आया हो। वे सब आश्चर्य में पड़ गए। यह कैसी कर्मलीला है! नुकसान करके आनेवाले का सम्मान, कमाकर लानेवालों की उपेक्षा?

हम लाखों कमाकर लाते हैं, परन्तु माता-पिता कभी हमारा आदर नहीं करते। इसने ऐसा कौनसा कार्य किया जो माता उस की आरती उतार रही है।

यह सच है कि

पुण्योदयेन जायते लोकपूजा प्रशंसनम्।
विस्मयो हि न कर्तव्यस्तत्त्वविज्ञानशालिभिः।

अर्थः—पुण्य के उदय से लोक में मान—सम्मान और प्रशंसाएँ होती हैं। इसलिए तत्त्वज्ञान से सुशोभित पुरूषों को आश्चर्य नहीं करना चाहिए।

वे परस्पर कहने लगे यह व्यापार के लिए नहीं सैर-सपाटे के लिए गया था। जन्म से अमीर होने से इसे क्या पता कि व्यापार क्या होता है? हमारे माँ पिताजी को भी देखो, नुकसान करके घर आनेवाले इस मूर्ख की आरती उतार कर प्रशंसा कर रहे हैं। हम इसे कर्म की लीला ही समझें, जरूर इसने पूर्व में अच्छे कर्म किये होंगे, तभी तो इतनी प्रशंसा मिल रही है इसे। क्योंकि **जिसने पूर्व में अच्छे कर्म किए होते हैं उनको इस जन्म में बुरे कर्म करने पर भी प्रशंसा ही मिलती है।**

व्यवसायस्ततो नृणां पुण्यपापफलोदयः।

अर्थः— मनुष्यों का व्यापार क्या है? पुण्य और पाप का फल ही तो होता है।

उद्यमो हि विना पुण्यैर्निष्फलो दृश्यते यतः।
इति पुण्यार्जने यत्नो विधातव्यो विवेकिभिः।।

अर्थः— पुण्य के बिना प्रयत्न निष्फल देखा जाता है, इस कारण विवेकी मनुष्यों को पुण्य के उपार्जन करने में प्रयत्न करना चाहिए।

यद्यपि यह बात सत्य थी, परन्तु वे इसे स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। धन्यकुमार से द्वेष करने वाले वे लोग पूर्व के वैरबन्ध के कारण दुःखी हुए। दुःखी होकर कहने लगे–

माते! इस छोटे ने कौनसा बड़ा तीर मारा है, जो इतना खुश हो रही हो। इसने नुकसान ही किया है, तू दुःखी होने की बजाय खुश हो रही है।

माँ ने कहा–

बेटा, माँ की ममता को तुम पुरूष क्या समझोगे? इतना कहकर देवश्री ने सबको भोजन कराया। सबके भोजन के बाद धन्यकुमार के प्रति विशेष राग होने से वह पानी गर्म करके उस पुरानी खाट को धोने लगी। उसे मूर्ख समझने वाले सभी पुत्र वहीं पास बैठे थे। उसने सोचा खाट धुल जायेगी तो सभी को अच्छी लगेगी। शायद वे धन्यकुमार के प्रति कम द्वेष करने लगेंगे।

खाट धोते समय खाट के एक पाये में से कुछ छाल हट गई। देवश्री ने उसे हाथ से और हटाया। छाल के हटते ही उस पाये में से सूर्य से भी अधिक रोशनी वाले पाँच दिव्य रत्न पृथ्वी पर गिरे। उनके प्रकाश से घर आंगन दमकने लगा। देवप्रिय आदि भौंचक्के रह गये। उनको इस बात का अंदाजा नहीं था कि जिसकी निन्दा करते-करते वे थक नहीं रहे थे, वह इतना पुण्यशाली निकलेगा। उसके पुण्य के उदय से कचरे में से रत्न निकलेंगे। **खोटे व्यापार में भी पुण्य ही फलता है।**

उन रत्नों के साथ एक बीजपत्र भी था।

धन्यकुमार के पिता ने विचार किया कि इस समय सोच विचार करके ही कार्य करना चाहिए। विद्वानों ने कहा है कि

भाव्यं प्रज्ञावता पुंसा त्रिकालकुशलेन वै।

अर्थः–बुद्धिमान मनुष्य को आगे-पीछे वर्तमान (त्रिकाल) का विचार करके कार्य में कुशल होना चाहिए।

पिता श्रीदत्त ने सोचा कि लोभ के वशीभूत होकर रत्नों को नहीं लेना चाहिए। क्योंकि

लोभो ह्यत्र मनुष्याणां सर्वानर्थस्य कारणम्।

अर्थः–इस संसार में लोभ ही मनुष्य की सभी बुराइयों का कारण होता है।

इसलिए जब तक किसी दुर्जन की नजर पड़े उससे पहले ही राजा के सामने रत्नों के बारे में निवेदन करना चाहिए। यह सोच कर श्रीदत्त सेठ रत्नों और बीजपत्र को लेकर धन्यकुमार के साथ राजदरबार में गया। राजा को रत्न और बीजपत्र देकर कहा– महाराज! मेरे आठ पुत्र हैं, उनमें सबसे छोटा धन्यकुमार है। आज मैनें उसे 500 दीनार देकर उसे व्यापार के लिए भेजा था। वहाँ उसने लकड़ियों से भरी बैलगाड़ी खरीदी, बैलगाड़ी के बदले भेड़ खरीदी। भेड़ के बदले पुरानी खाट की आठ लकड़ियाँ खरीदीं, जब वह उन लकड़ियों को लेकर आया, तब उसकी मॉ ममता के कारण पुरानी खाट को धोने लगी, धोते-धोते उसके एक पाये में से छाल निकल गई, जिसमें से ये पांच दिव्य रत्न धरती पर गिरे साथ में यह बीजपत्र भी निकला। आप हमारे स्वामी हो, इसलिए इन दिव्य रत्नों के स्वामी आपको जानकर आपके पास लेकर आया हूँ।

राजा ने सोचा यह श्रीदत्त सेठ बहुत ही सज्जन और भोला है, नहीं तो ये रत्न लेकर हमारे पास क्यों आता? चुपचाप घर में रख सकता था। घर में रखता तो हम किन अधिकारों से छीनते? फिर उसके निर्लोभीपने की परीक्षा के लिए कहा–

हे श्रीदत्त! ये रत्न आपके पुत्र के पुण्य के कारण उसे प्राप्त हुए हैं, हमे इसके अधिकारी किस कारण से कहते हो?

श्रीदत्त– हे दयालु राजन! आप हम सब के पिता हो, हम आपके पुत्र हैं, सम्पत्ति के अधिकारी पिता ही होते हैं, पुत्र नहीं। पुत्र का कर्तव्य होता है कि वह अर्जित सम्पति पिता को सौंपे। इसीलिए मैं आपके पास इन रत्नों को लेकर आया हूँ। राजा ने सोचा– यह सेठ सचमुच में निर्लोभी है। ऐसी निर्लोभी की सम्पत्ति हड़पने का अधिकार हमारे पास नहीं है। यह सोच राजा ने कहा– ठीक है। कहकर वह बीजपत्र पढ़ने के लिए मंत्री के पास भेज दिया। उस बीजपत्र के अनुसार ये रत्न लम्बे समय तक राजगृह में रहे थे। पत्र को सुनने के बाद राजा ने सोचा–

धनं धान्यं निधानं च शुभसंचयसंभवम्।

अर्थः– धन, धान्य और निधान पुण्यकर्म के संचय से उत्पन्न होते हैं।

वसु धरति धात्रीयं यतस्ततो वसुन्धरा।।
परं दत्ते न सर्वेषां शुभसंचयवर्जिनाम् ।
पुण्यवतां परं दत्ते पुण्याधीना हि सम्पदः।।

अर्थः– यद्यपि यह पृथ्वी वसु (धन) को धारण करती है, इसलिए वसुन्धरा कहलाती है, परन्तु पुण्य के संचय से रहित समस्त जीवों को कुछ नहीं देती है। पुण्यवान जीवों को ही देती है। सो ठीक है, क्योंकि–

सम्पदाएँ पुण्य के अधीन होती हैं। यह सोच कर सेठ से कहा–

तुम्हारा यह पुत्र पुण्यवान है, उसने पुण्य से यह सम्पत्ति प्राप्त की है। इसलिए हे सत्यपुरूष! बीजपत्र सहित इसे मैं नहीं ले सकता। इसका अधिकारी मैं नहीं हूँ। बीजपत्र में इसी के नाम का उल्लेख है। वह इस प्रकार है–

इसी नगरी में पूर्व में एक वसुमित्र नाम का राज-सेठ था, उस सेठ ने सन्तान नहीं होने पर अवधिज्ञानी मुनिराज से पूछा–

हे महाराज! मैं इस अथाह धन सम्पति का मालिक हूँ पर मेरी कोई सन्तान नहीं है। मैं इस सम्पत्ति को किसी पुण्यशाली धर्मात्मा को दान करना चाहता हूँ। कृपा कर यह बताइए कि इस सम्पत्ति का स्वामी कौन होगा?

तब मुनिराज ने बताया था कि इसका स्वामी पुण्यशाली धर्मात्मा सेठ श्रीदत्त का पुत्र धन्यकुमार होगा। इसलिए उस सेठ ने सारी सम्पत्ति पांच रत्नों में समेट कर धन्यकुमार के नाम से ही यह बीजपत्र लिखा है कि "मैं धर्मभावना से यह सम्पत्ति पुण्यशाली धर्मात्मा धन्यकुमार को समर्पित करता हूँ।" जब बीजपत्र में ही यह बात लिखी है कि इसका स्वामी धन्यकुमार होगा तो मैं इसका अधिकारी कैसे हो सकता हूँ? इसलिए मैं अपनी ओर से आपको दान करता हूँ ऐसा समझकर ही इन्हें ले लीजिए। हे सेठ! सचमुच में आपका पुत्र बहुत ही धर्मात्मा, पुण्यात्मा, सौभाग्यशाली है।

चूँकि इसने पुण्य किया है, इसलिए मैं इसका एक और नाम **"कृतपुण्य"** रखता हूँ। राजा ने अनेक आभूषण आदि देकर धन्यकुमार और उसके पिता का सत्कार किया। सच ही है–

सधर्म्मः पूज्यते देवैः अणिमादिगुणाकरैः।
नरैश्च मानुषाकारैः कथं धर्म्मो न सेव्यते।।

अर्थः– धर्मात्मा मनुष्य अणिमा आदि ऋद्धियों के स्वामी ऐसे देवों के द्वारा तथा राजा आदि मनुष्यादि के द्वारा पूजा जाता है, फिर लोग धर्म की सेवा क्यों नहीं करते? यह विचारणीय है।

राजसम्मान पाकर प्रसन्न होता हुआ सेठ श्रीदत्त और धन्यकुमार घर आये। श्रीदत्त सेठ और धन्यकुमार की चर्चा चारों

ओर होने लगी। सभी नागरिक उनका सम्मान करने लगे थे। परन्तु उसके देवप्रिय आदि सगे भाई उसके पुण्य और मान-सम्मान को देखकर उससे ईर्ष्या करने लगे। उनकी धन्यकुमार के प्रति द्वेषभावना और बढ़ गई । उन्होंने एक दिन बातचीत करते हुए धन्यकुमार से कहा– यदि तुम इतने ही पुण्यशाली हो तो जंगल की कालगुहा में प्रवेश करके बताओ। तब पता चलेगा कि तुम कितने पुण्यशाली हो?

धन्यकुमार को लगा कि यदि मेरे कालगुफा में प्रवेश करने से मेरे भाइयों का द्वेषभाव कम हो जाये, तो मुझे भी उनका द्वेष कम करने का प्रयत्न करना चाहिए। दूसरे दिन उसने पिता के पास जाकर कहा–

पिताजी! मैं प्रसन्न होकर आपकी अनुमति चाहता हूँ कि मुझे जंगल की कालगुफा में प्रवेश की अनुमति दीजिए। मैं उसमें प्रवेश करके देखना चाहता हूँ , वह क्या है? कैसी है?

पिता ने कहा–

बेटे! वह कालगुफा अर्थात् मौत की गुफा है, उसमें गया हुआ आज तक कोई भी जीवित नहीं लौटा है। हमें दुःख देने वाली अनुमति मत मांगो, कोई और इच्छा हो तो बताओ। धन्यकुमार ने पिता से कहा–

पिताजी! आयु समाप्ति के बिना कोई किसी को मार नहीं सकता। यदि मेरी आयु शेष हो, पुण्यकर्म साथ हो तो कालगुफा भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ेगी।

इस पर सेठ श्रीदत्त ने कहा –

बेटे! तुम्हारी बातें अक्षरशः सत्य हैं, परन्तु जहाँ से आज तक कोई भी जीवित नहीं लौटा है, वहाँ जाने की अनुमति हम कैसे दें? जानबूझ कर साँप के मुँह में हाथ कौन देना चाहता है? इसलिए यह जिद छोड़ दो।

धन्यकुमार– पिताजी, मेरा पुण्य-पाप पर पूर्ण भरोसा है। उसी की परीक्षा के लिए मैं उस कालगुफा में प्रवेश करना चाहता हूँ। मैं जीवित ही आऊँगा– ऐसा विश्वास है। कहा भी है–

साध्यं संकुर्वतस्तात सिद्धिर्यदि न विद्यते।
तथापि पौरूषः कृत्यः परीक्षायै शुभात्मनाम्।।

अर्थः–हे पिताजी! कार्य को अच्छी तरह करने पर भी यदि सफलता न मिले तो भी परीक्षा के लिए ही पुण्यशालियों को पुरूषार्थ करना चाहिए।

तथा

उद्योगिनं पुरूषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।
दैवं हि दैवमिति कापुरूषाः वदन्ति ।
दैवं निहत्य कुरू पौरूषमात्मशक्त्या ,
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः।।

अर्थः– उद्योग करने वाले श्रेष्ठ पुरूष को लक्ष्मी प्राप्त होती है। भाग्य ही सब कुछ है– ऐसा आलसी पुरूष कहते हैं। इसलिए भाग्य छोड़कर अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्न करो। प्रयत्न करने पर भी यदि कार्य में सफलता नहीं मिलती है, तो इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है।

और भी कहा है–

किं करोति नरः प्राज्ञः प्रेर्य्यमाणः स्वकर्मभिः।
प्रागेव हि मनुष्याणां बुद्धिः कर्मानुसारिणी।।

अर्थः– बुद्धिमान मनुष्य क्या करता है? वह तो अपने कर्मों के उदय से प्रेरित होता हुआ ही सब कुछ करता है, क्योंकि मनुष्यों की बुद्धि पूर्व के कर्म के उदय के अनुसार होती है।

और भी –

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये, महार्णवे पर्वतसंकटे वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा, रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि।।

अर्थ:–वन में, रण (युद्ध) में, शत्रु, जल, अग्नि के बीच में, महासागर में अथवा पर्वत आदि के संकटपूर्ण स्थान में, सोये हुए की, पागल की अथवा विषम स्थिति में स्थित मनुष्य की पूर्वकृत पुण्य ही रक्षा करते हैं।

श्रीदत्त सेठ ने विचार किया। यह इतनी सारी शास्त्रों की बातें बता रहा है, इसका मतलब यह जाये बिना मानेगा नहीं। यदि मैं अनुमति नहीं देता हूँ तो दुःखी रहेगा। इसलिए इसे अनुमति देने में ही लाभ है। तब उन्होंने कहा बेटा संभल कर जाना, संकट दिखे तो हमारी खुशी के लिए तुरंत लौट आना, पुण्य तुम्हारी रक्षा करें।

पिता की अनुमति पाकर धन्यकुमार कालगुफा की ओर गया। सभी भाई प्रसन्न हो रहे थे कि आज यह गया तो लौटकर नहीं आयेगा। उसके बाद हम आराम से रहेंगे। क्योंकि इसके पुण्य ने हम सब को दबा रखा है।

धन्यकुमार कालगुफा (यममंदिर) में गया। वह पुण्य के कारण उसमें ऐसा चलता गया, मानो अपने घर में ही प्रवेश कर रहा हो। वह भीतर गया। तब उसने अन्दर एक सुंदर महल देखा। जैसे ही वह महल के पास गया, वैसे ही महल के रक्षक देवों ने खड़े होकर फिर मस्तक झुकाकर नमस्कार कर कल्पवृक्ष के फूलों की उस पर पुष्पवर्षा कर उसका स्वागत किया। यह सब पुण्य का फल जानकर धन्यकुमार उस स्वागत से अभिभूत तो था, पर उसमें उसे कोई विशेष आश्चर्य नहीं लगा। उसके बाद वे देव उसे महल के भीतर ले गए। वहाँ ऊँचे सिंहासन पर धन्यकुमार को बिठाया। वहाँ और अन्य देवों ने आकर धन्यकुमार का स्वागत किया। उसके बाद उनमें से एक प्रमुख देव ने धन्यकुमार से कहा–

हे पुण्यात्मा, पुण्यपुरूष, हम सब देव कुबेर के सेवक हैं, उनकी आज्ञा से यहाँ रखे हुए खजाने की रक्षा कर रहे हैं। उन्होंने निश्चित तिथि पर आपके आगमन की बात अपने अवधिज्ञान से जानकर हमें बतायी थी तथा यह खजाना आपको सौंप देने का आदेश दिया हुआ है। वह तिथि आज ही है तथा इस खजाने के स्वामी आप ही हैं। अब इस खजाने को स्वीकार कर हमें जाने की अनुमति दीजिए।

देखो, धन्यकुमार के पुण्य का उदय। जहाँ से आज तक कोई जीवित नहीं लौटा था, वहाँ न केवल वह जीवित था, बल्कि जिसकी कल्पना नहीं थी, ऐसे खजाने का लाभ उसे हो गया। यह सब उसके पुण्य का ही प्रताप था।

वे सब देव धन्यकुमार को खजाना सौंप कर अनुमति पाकर लौट गए।

खजाना लेकर धन्यकुमार बाहर आया। तब तक लोगों की भीड़ कालगुफा के बाहर जमा हो चुकी थी। भीड़ में कोई कह रहा था– यह कोई देवता है, जो जीवित आ रहा है। दूसरा कह रहा था– यह विशिष्ट परमाणुओं से बना है, तभी तो कालगुफा के रक्षक देवों ने इसका घात नहीं किया, बल्कि इसे सम्मानित कर खजाना दे गए। **वास्तव में सब व्यर्थ है, सिर्फ पुण्य ही सार्थक है।** यह तो पुण्य का पुन्ज है। यह धन्यकुमार नहीं, पुण्यकुमार लगता है। संसार में लोग वास्तु का विचार करते हैं, वह सब गृहीत मिथ्यात्व है। धन्यकुमार को देखो अशुभ माने जानेवाले स्थान से खजाना पाकर निकला है। न **स्थान प्रधान होता है, न दिशा प्रधान होती है, सिर्फ पुण्य ही प्रधान है।** हम लोग हीन पुण्य के कारण कितने भयभीत रहते हैं, इसे देखो शेर की तरह निर्भय होकर आया है।

सुना है देवों ने इसे चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त रत्नों से बने सिंहासन पर विराजमान कर इसका अभिषेक किया। हमारा मन कमजोर है, इसलिए हम वास्तु का विचार करते हैं, वास्तव में वास्तु से मनुष्य का कर्मोदय नहीं बदलता है। वास्तु देखकर विचार करके रहने वाले लोग क्या बीमार नहीं पड़ते या मरते नहीं या उनके पाप का उदय नहीं आता? केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए लोग भोले-भाले मनुष्यों को वास्तु का भय दिखाकर कुछ अशुभ कुछ शुभ कहकर ठगते हैं। वास्तु बताने वालों को ही देखो वे कितने सुखी हैं? अरे सब ढकोसला है। **अपना पुण्य, पाप का उदय ही परमार्थ है।** वास्तु आदि नहीं। धन्यकुमार को– धनसहित देखकर, जीवित देखकर क्या यह बात समझ में नही आती? अच्छी तरह से समझ में आनी चाहिए।

वास्तव में पूर्वकर्म ही बलवान होता है। वास्तु बेकार है। मंदिर आदि के लिए जो भगवान के मुँह की दिशा बताई है। वह भी किसी विशेष प्रयोजन से है। परन्तु क्या चारों दिशाओं में अकृत्रिम जिनबिम्ब नहीं हैं? क्या नन्दीश्वर द्वीप में चारों दिशाओं में जिनमंदिर की रचनाएँ नहीं हैं? हैं तो वास्तु व्यर्थ है। **स्वयं किये पुण्य-पाप ही समर्थ हैं, वास्तु नहीं।** यह समझ में आना चाहिए।

देखो, पुण्य ही संसार में बलशाली दिखता है, जिसके कारण राक्षस किसी मनुष्य को मारता नहीं, बल्कि उनका रक्षक बन जाता है। लोगों की यह धारणा भी गलत है कि भूत, प्रेत, व्यंतर परेशान करते हैं।

यदि वे ऐसे होते तो धन्यकुमार को परेशान करते, मारते, ऐसा दिव्य रत्नों का खजाना नहीं सौंपते। लोग भूत, प्रेत, व्यंतरों से बहुत डरते हैं। वे भी हमारी तरह जीव हैं, उनसे

डरना नहीं चाहिए। उनको अपने समान समझना चाहिए। केवल शरीर का ही तो अंतर है, उनका वैक्रियक शरीर अदृश्य होने से भय नहीं करना चाहिए। वे देवगति के जीव हैं। उनकी अपनी दुनिया है। वे किसी को परेशान करने के लिए देवगति में नहीं गए हैं। अपने पुण्य के कारण से गए हैं। पापी होते तो देवगति में क्यों जाते? उनकी भावना भी खराब नहीं होती, उनकी भावना खराब होती तो देवगति में कैसे जन्म लेते?

हमें भूत-प्रेत-व्यंतर-राक्षसों के बारे में अपनी धारणा बदलनी चाहिए। क्या जीवन्धर के पुण्य के उदय से स्वर्ग से आकर देवी ने उनकी सहायता नहीं की थी? तो हम इन देवों को डरावने ही क्यों मानते हैं? हमारे पुण्य पाप से ये प्रेरित होकर निमित्त मात्र होते हैं।

धन्यकुमार के पास पुण्य था, तभी ये उसकी सहायता में निमित्त बने हैं। लोग तरह-तरह से धन्यकुमार की प्रशंसा करते थक नहीं रहे थे। राजा ने उसका सम्मान कर कहा– पुण्य का उदय देखना हो तो धन्यकुमार को देखो।

देवों को भी कम्पित करने वाले धन्यकुमार के पुण्य को देखकर कितने ही लोग अपने जीवन संसार से उदास हो गए। सोचने लगे– हमारा तो जन्म ही व्यर्थ है, हम ऐसा तप करेंगे, जिससे हमें संसार का दुबारा मुँह देखना नहीं पड़े। धन्यकुमार ने बाहर आकर भाइयों के पैर छुए। उस समय उनके चेहरे देखने लायक थे। घर में प्रवेश कर माता पिता के पैर छुए। धन्यकुमार का नया जन्म मानकर श्रीदत्त सेठ ने घर पर वे ही बाजे बजवाये जो उसके जन्म के अवसर पर बजवाये थे। मंगल गीत गवाये। मंदिरों में दान दिया। याचकों को इच्छानुसार दान दिया। खूब धूमधाम से उत्सव मनाया।

धन्यकुमार को देखकर उसके देवप्रिय आदि भाइयों की हालत ऐसी हो गई कि काटो तो खून नहीं। उनके चेहरों का रंग फीका पड़ गया। वे लज्जित हुए। परन्तु धन्यकुमार ने उन्हें अपमानित महसूस नहीं कराया। वास्तव में वे स्वयं ही अपने पाप के उदय से लज्जित हो गए। धन्यकुमार ने नहीं, उसके पुण्य ने उन्हें हराया था।

वे सब ईर्ष्या का भाव मन में रखकर उसके साथ बाहर से बड़े प्यार से रह रहे थे। दिन बीतते गए। बसन्त ऋतु का समय आया। सब भाई योजना बनाकर धन्यकुमार को जलक्रीड़ा के लिए एक बड़ी-सी वापिका पर ले गए। धन्यकुमार उनकी कुटिलता से अनजान था।

वे सब भाई धन्यकुमार के साथ पानी में उतरे । वहाँ एक भाई ने कहा– हम सब एक खेल खेलते हैं कि देखें कौन कितनी देर तक पानी के भीतर रहता है, पानी के भीतर ज्यादा देर तक रहने के लिए शरीर में बहुत ताकत चाहिए। हम में से जिसमें सबसे ज्यादा शक्ति होगी, वही पानी में ज्यादा देर तक रह पायेगा।

ठीक है– ऐसा कहकर सब पानी के भीतर चले गए। उन सब की योजना थी कि धन्यकुमार पानी में डूबा रहेगा, तब हम बाहर आ जायेंगे, यह पानी में रहेगा। उस योजना के अनुसार वे सब धन्यकुमार को पानी में ही छोड़कर बाहर आ गए। ऊपर आकर उन्होंने ऊपर से धन्यकुमार पर पत्थर बरसाये। परन्तु **पुण्यवान को उपसर्ग छूते तक नहीं**। धन्यकुमार पहला पत्थर गिरते ही समझ गया कि यह सब भाइयों की एक कुटिल योजना है, जिसके द्वारा वे उसे मारना चाहते हैं। धन्यकुमार को पानी के भीतर ही एक जगह मिली, जिसके नीचे वह छिप गया। ऊपर से पत्थर गिरने पर भी वह सुरक्षित

रहा। उसी समय धन्यकुमार के भाइयों ने बहुत बड़ा पत्थर वापिका के ऊपर रख दिया, जिससे धन्यकुमार बाहर नहीं आ सके। परन्तु धन्यकुमार के पुण्य ने वहाँ भी उसे राह दिखाई। वापिका का एक गुप्त रास्ता था, जो उन लोगों के पत्थर फेंकने से अपने आप खुल गया। धन्यकुमार उसी रास्ते से बाहर आ गया।

धन्यकुमार के भाई उसे आज तो निश्चित ही मरा हुआ जानकर घर चले गए। माता-पिता के द्वारा उसके बारे में पूछने पर बताया कि वह जंगल की वापिका की ओर गया था, आता ही होगा।

धन्यकुमार घर की ओर आ रहा था। कुछ कदम चला ही था कि उसके मन में विचार आया कि मेरे भाइयों को मेरे प्रति तीव्र द्वेष है। मैंने ही पूर्व में ऐसे खोटे कर्म किये होंगे, तभी तो ऐसा संयोग मिला है। भविष्य में ऐसा संयोग न रहे, इसलिए इस समय मुझे अपने भाव अच्छे रखने चाहिए। नहीं तो यह कर्मपरम्परा कभी समाप्त ही नहीं होगी। अब मुझे घर लौटकर भी नहीं जाना चाहिए। क्योंकि **दुष्ट अभिप्राय वालों के साथ रहना और जहरीले साँपों वाले घर में रहना बराबर है।** मेरे कारण भाइयों के विचार सदा दूषित ही रहेंगे। इसलिए मुझे घर की बजाय और जगह जाना चाहिए। यह सोचकर वह घर को छोड़ने का निर्णय कर बीच रास्ते से ही वापिस मुड़कर उसी रास्ते पर चलने लगा, वह रास्ता जिधर मुड़ा वह भी उधर मुड़ गया। वह रास्ता जिधर गया, उधर ही वह चलता रहा।

चलते –चलते उसे हल चलाता हुआ किसान दिखा। उसने मन में सोचा–यह कौन–सी विद्या या कला है। मैंने गुरूकुल में रहकर बहुत–सी कलायें, विद्यायें सीखी हैं, परन्तु यह विद्या नहीं सीखी। इस मनुष्य को गुरू बनाकर मुझे यह

विद्या सीखनी चाहिए, यदि ये महाशय मुझे सिखायें तो। चलो पास जाकर देखता हूँ, पूछता हूँ , वे सिखायेंगे या नहीं। धन्यकुमार ने पास जाकर उस किसान से कहा–

हे महाशय, यह कौनसी विद्या है?

किसान– हे सज्जन बालक, यह कृषि की कला है। यह साधन हल है। इससे खेती उपजाऊ बनी रहती है। यह एक सरल सा कार्य है।

धन्यकुमार– क्या आप मेरे गुरू बनकर मुझे हल चलाने की कला सिखाना पसंद करोगे?

किसान– आप ऊँचे कुल के हो, इसलिए आपको इसके बारे में पता नहीं है। यह तो थोड़ी ही देर में सीखने में आने वाली सरल-सी कला है। आप स्वयं स्वतः ही बिना बताये, मात्र देखने से ही सीख जाओगे।

हे सज्जन बालक, भोजन का समय हो चुका है, आइए सबसे पहले हम दोनों भोजन करते हैं। उसके बाद आप हल चलाना। उसके बाद दोनों ने भोजन किया। किसान ने कहा– हे सज्जन बालक, प्रातःकाल से कार्य करते रहने से यह शरीर थका हुआ है, मैं थोड़ी देर इसी छायादार जगह पर आराम करना चाहता हूँ। आप चाहो तो थोड़ी देर आराम कर लीजिए।

धन्यकुमार ने कहा–

हे महाशय, मैं युवा हूँ, मुझे थकान नहीं है। आप आराम कीजिए, मैं तब तक हल चलाता हूँ। यह कहकर धन्यकुमार हल चलाने लगा। धन्यकुमार बार बार घुमा घुमाकर हल चलाने लगा। एक जगह हल के अग्रभाग में एक सांकल फँसी, धन्यकुमार ने जब बैलों से और जोर लगवाया, तब उस सांकल के साथ रत्नों से भरा हुआ सोने का कलश बाहर

आगया। धन्यकुमार ने सोचा– यह मुझसे क्या हुआ? इस किसान द्वारा अपने पुत्रादि के लिए चोर आदि से छिपाकर रखा हुआ धन मैंने बाहर निकाला उसने तुरंत उस स्वर्ण कलश को जमीन में गाड़कर ऊपर से मिट्टी से उसे ढँक दिया। तथा दो चार फेरे चलाकर वापिस किसान के पास आकर उसे धन्यवाद देकर आगे की यात्रा के लिए निकल गया। किसान पुनः हल चलाने लगा, तब उसे एक समतल स्थान दिखा। उसने सोचा उस बालक से यह स्थान छूट गया है। मुझे उस स्थान को हल से जोतना चाहिए। यह सोचकर वह उस समतल स्थान पर हल चलाने लगा। ज्योंही वहाँ हल पहुँचा, त्योंही हल के अग्रभाग में सांकल फँसी और सांकल के साथ रत्नों से भरा स्वर्ण कलश बाहर आगया। तब वह किसान विचार करने लगा कि मेरे दादा, परदादा आदि ने खेत जोता, परंतु उन्होंने कभी ऐसा रत्नभरा कलश नहीं पाया, यह प्रभाव उसी परदेशी पुण्यशाली बालक का है। उससे ही यह कलश बाहर निकला है, उसने इसे वापिस रखकर भूमि समतल की है। वह इतना पुण्यशाली है कि पृथ्वी उसे बिना मांगे ही धन दे रही है। क्योंकि–

न हि पुण्यैर्विना लक्ष्मीं लभते कोऽपि भूतले।

अर्थः– इस पृथ्वी पर पुण्य के बिना कोई भी लक्ष्मी प्राप्त नहीं कर सकता। जिसके पुण्य से कलश निकला, वास्तव में वही इस कलश का स्वामी है। ऐसा विचारकर वह किसान धन्यकुमार जिधर गया, उधर ही चल दिया।

धन्यकुमार किसान को देखकर घबराया। उसने सोचा इस गरीब का खजाना मेरे द्वारा खुल गया, इसलिए नाराज होकर मेरा पीछा कर रहा है। वह तेज कदमों से चलने लगा। किसान भी तेज कदमों से उसका पीछा करने लगा। उससे

धन्यकुमार और घबरा गया और वह दौड़ने लगा। किसान के हाथ में डण्डा था। धन्यकुमार ने सोचा यह मुझे मारने के लिए ही आ रहा है। किसान ने तेज दौड़ते हुए धन्यकुमार से कहा–

हे सज्जन बालक! घबराओ मत, मैं तुम्हे मारने के लिए नहीं बल्कि मिलने के लिए आ रहा हूँ। रूको, भागो मत। उस किसान की बात सुनकर धन्यकुमार रूक गया। किसान ने पास आकर धन्यकुमार से कहा –

हे बालक! क्यों घबरा रहे हो? मैं तुम्हें मारने पीटने के लिए नहीं, कुछ देने के लिए आ रहा हूँ।

धन्यकुमार को आश्चर्य हुआ। उसने कहा– हे महाशय आपका गुप्त खजाना गलती से खुल गया। मुझसे अपराध हुआ है, मुझे क्षमा कर दीजिए।

किसान– महाभाग, आप मुझे क्षमा कर दीजिए। आप पुण्यशाली हैं। आप दिव्य पुरूष हैं। मैं गरीब हूँ। यह खेती हमारे पुरखों की निशानी है, जो हमें रोटी देकर हमारे परिवार का पेट भर रही है। आज आपके पवित्र कदमों ने उसे छुआ तो उसने रत्नों से भरा स्वर्ण कलश दे दिया। उसे लीजिए। वह आपका ही है। हम दादा, परदादा, आदि के समय से उसे जोतते आ रहे हैं। साल-दर-साल मेहनत करते हुए हमें आज तक एक सिक्का भी नहीं मिला। आज आपके पुण्यप्रताप से खजाना मिल गया है। आपके पास पूर्व का पुण्य है, इसलिए धरती में से भी लक्ष्मी निकल आयी है, पुण्यशाली ही उसका स्वामी होता है, आप पुण्यशाली हो इसलिए आप ही उसके स्वामी हो। उसे ग्रहण कर मुझे निर्भार कर दीजिए।

धन्यकुमार सोच में पड़ गया। देखो, धरती पर ऐसे -ऐसे लोग भी होते हैं। यह ब्राह्मण निर्धन है, परंतु लोभी नहीं। यह इस खजाने को चुपचाप रख सकता था। मैं तो निकल

आया था। इसे कौन रोकता? इसी के खेत में यह खजाना मिला है, इसलिए इसका असली मालिक तो यही है, मैं नहीं। फिर सोच विचार कर उसने कहा–

हे भव्य जीव, आप निर्लोभी हो, इसलिए ऐसा कह रहे हो, लेकिन सोचो तो सही। खेत आपका है। इसलिए खजाना भी आपका ही है। मैं उसका स्वामी कैसे? मैंने तो अपराध किया है, उसे बाहर निकाल कर। उसे आप ही रख लीजिए, वह आपका ही है।

किसान ने कहा–

हे धर्मात्मा, खेत मेरा है, परन्तु खजाना नहीं; न हमने उसे छुपाकर रखा था। हमने खेत जोतते हुए जीवन खपा दिये पर हमें खजाने के कभी दर्शन नहीं हुए। इसलिए आप ही उसके असली मालिक हैं। इसलिए वह आपका ही है। आप ही लीजिए।

धन्यकुमार– हे महोदय, वह आपके मत में मेरा है, तब भी अपनी ओर से मैं आपको दान करता हूँ। आप रख लीजिए।

किसान–

बोधयामि जनं प्रीतमप्रीतं धनकारणेन।

अर्थः– मनुष्य धन के कारण ही प्रसन्न, अप्रसन्न होते हैं। धन मिले तो प्रसन्न होते हैं, नहीं मिलने पर अप्रसन्न होते हैं। परन्तु आप संसार के पहले व्यक्ति दिख रहे हो जो धन मिलने पर प्रसन्न नहीं, नहीं मिलने पर नाराज नहीं। यह धन ही सभी बुराइयों की जड़ है। मेरे घर में शांति है। बच्चे सही मार्ग पर चल रहे हैं। उनमें परस्पर प्रेम है। परन्तु खजाने को देखकर वे मेहनत छोड़ देंगे। गलत रास्ते पर चलेंगे। इसे वे व्यसनों, बुरी आदतों में खर्च करेंगे। इस धन से तो मैं बच्चों को ही खो

दूंगा। घर में अशांति हो जायेगी। अचानक आया धन अनर्थ की जड़ न बन जाये।

अतः इसे कृपा करके स्वीकार कीजिए। मुझ पर उपकार कीजिए।

गंभीरत्वं समुद्रस्य यथाचिंत्यं नृजन्मनः।
तथा ते मर्त्यसारस्य न चिन्त्याः पुण्यसम्पदः।।

अर्थः– जैसे समुद्र की गंभीरता अचिन्त्य है, वैसे मनुष्यों में सारभूत आपकी पुण्यसम्पदाएँ भी अचिन्त्य हैं।

आप पूर्वजन्म में भी निस्पृह रहे हो तभी वर्तमान में आपको ऐसी दिव्य सम्पदाएं प्राप्त हो रही हैं तथा वर्तमान में भी निस्पृह हो, आपके पास यह सम्पत्ति सुशोभित होगी। हम जैसे रागी, संसारी के पास ऐसी सम्पदाएँ सुशोभित भी नहीं होती हैं। सम्पदा की शोभा आप जैसे पुण्यवान से ही है। **अच्छे जीवन के लिए सम्पदा नहीं, संस्कार चाहिए**। आपके पास संस्कार हैं और सम्पदाएं भी। हीरा सोने में जड़कर ही शोभा पाता है। सम्पत्ति आप जैसे का आश्रय पाकर दमकने लगती है। अतः आप उसे स्वीकार कर लीजिए।

धन्यकुमार ने हाथ जोड़कर कहा–

सम्पत्ति का कुफल मैं देख चुका हूँ। सम्पत्ति में मेरी इच्छा नहीं है। जिस पुण्य के उदय से माता के स्तनों में अपने आप दूध उत्पन्न होता है, उसी पुण्य पर मेरा भरोसा है। इसलिए हाथ जोड़कर आपसे निवेदन करता हूँ कि आप ही इस खजाने को स्वीकार कीजिए। भले ही यह मेरा खजाना मानते हो, पर इसका दान तो कर ही सकता हूँ क्योंकि

लब्ध धनं ब्रुवन्त्यार्या दानाय परिकल्प्यते।

अर्थः– प्राप्त किये हुये धन को श्रेष्ठ पुरूषों ने दान देने के लिए बताया है।

आप जैसा निर्लोभी व्यक्ति दान के लिए मुझे दूसरा नहीं मिल सकता। अतः मैं हाथ जोड़कर नम्र निवेदन के साथ आपको दान देता हूँ। आप भव्य हो, विशुद्ध बुद्धि के धारक हो, संस्कारवान हो, आप ही इसका सदुपयोग कीजिए।

किसान ने सोचा– यह तो अत्यन्त निर्लोभी, निस्पृह व्यक्ति है, यह कितना भी कहो, खजाना स्वीकार नहीं करेगा। इससे धन के विषय में और अधिक कहना व्यर्थ है। यह मानेगा नहीं। निर्लोभी के पास सम्पत्तियाँ स्वयमेव आती हैं, पर **निर्लोभी को अपनी ओर लुभा नहीं पातीं। लोभी धन का दास बनकर जीता है, सम्पत्तियाँ निर्लोभी की दासियों की तरह सेवा करती** हैं। अन्त में उस किसान ने धन्यकुमार से, आशीर्वाद देते हुए कहा– हे महाभाग धर्मात्मा तुम्हारा भला हो, तुम चिरंजीव रहो , शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त करो। इस तरह के आशीर्वचन कहते हुए किसान चला गया।

धन्यकुमार आगे की यात्रा के लिए चल दिया। वह रास्ते में फल खाकर कुँओं का शुद्ध जल पीकर यात्रा करता रहा। एक के बाद एक गाँव, नगरों को पार कर निरन्तर पैदल चलते हुए गंगानदी के किनारे तक पहुँच गया। गंगानदी के किनारे पर **ककन्द** राजा के द्वारा बसाई गई काकन्दी नाम की एक सुंदर नगरी है। इस नगरी के बाहर एक विशाल बगीचा, उपवन था। धन्यकुमार उस उपवन (बगीचे) में पहुँच गया। वहाँ उसने एक पेड़ के नीचे आराम किया। वहाँ तालाब में स्नान किया, फल खाये, पानी पिया और आगे चलने लगा, तभी उसने तीन ज्ञान के धारी **मुनिसुव्रत** नाम के एक मुनिराज को देखा। धन्यकुमार ने पास जाकर उनको नमस्कार किया। भक्ति की। तथा उनके सामने सिर झुकाकर विनयपूर्वक बैठ गया। जब

मुनिराज का ध्यान टूटा, तब उसने मुनिराज से धर्म का उपदेश सुना। उपदेश सुनने के बाद उसने मुनिराज से प्रश्न पूछा–

हे दयानिधान, मैं अपनी ओर से ऐसा कोई कार्य नहीं करता, जिससे मेरे प्रति भाइयों को द्वेष हो, परन्तु मेरे भाई मुझसे सदा द्वेष क्यों करते हैं? जबकि हम सब एक ही माता पिता की सन्तानें हैं। ये सातों के सातों भाई मुझसे द्वेष क्यों करते हैं? जबकि संसार के सभी मनुष्य मुझसे अपनेपन से व्यवहार करते हैं। उन भाइयों के द्वेष का कारण मैं जानना चाहता हूँ। कृपा कर मुझे बताइए।

तब मुनिसुव्रत मुनिराज ने धन्यकुमार से कहा–

हे भव्य, जो तुम्हारी जिज्ञासा है, उसके बारे में सुनो। भाइयों के द्वेष का कारण सुनो। वे तुमसे द्वेष क्यों करते हैं? उसका कारण इस जन्म में नहीं, पूर्व जन्म में छिपा है, उसे तुम ध्यान से सुनो–

इसी भरतक्षेत्र में एक मागध नाम का देश था, उसके राजा का नाम देवदत्त तथा रानी का नाम देवश्री था। उस देश में कामवती नाम की सुन्दर नगरी थी। इस नगरी के स्वामी का नाम भोगरति था। उसकी पत्नी का नाम भोगवती था। भोगरति सेठ और भोगवती सेठानी के विवाह के लम्बे समय के बाद भी कोई संतान नहीं हुई। सेठ के पास अथाह सम्पत्ति थी, पर संतान नहीं थी। संतान की इच्छा से वह रात–दिन दुःखी रहता था। **क्योकि मनुष्य पदार्थों के अभाव या सद्भाव से दुःखी नहीं होता, बल्कि अपनी इच्छाओं के कारण दुःखी होता है।**

उनके पुण्यकर्म के उदय से सेठानी के गर्भ रहा। उसके गर्भ में जो जीव आया, वह पापी ही नहीं, महापापी था। वह जीव पूर्वभव में एक दुष्ट मनुष्य तथा चोर था। उसने एक शांतिनाथ भगवान का मंदिर देखा, जिसमें रत्नों की बड़ी–बड़ी

प्रतिमाएं थीं और स्वर्ण चाँदी के बर्तन थे। उस चोर ने सोचा कि यदि भूमितिलक नगर के धनपति नामक सेठ के द्वारा बनाये हुए इस मंदिर में चोरी कर पाया तो सात पीढ़ियों का धन इकट्ठा हो जायेगा। परन्तु यहाँ चोरी करूँ तो कैसे? क्योंकि इस प्रसिद्ध मंदिर में निरन्तर ही लोगों का आना जाना रहता है। रात को भी सेठ इसकी निगरानी करता तथा करवाता है। उसने सोचा कि और किसी उपाय से चोरी नहीं कर पाऊँगा, सिवाय इसके कि सेठ का विश्वास पात्र बने अथवा जिनमंदिर का सेवक बने। उसने वहाँ निरंतर ब्रह्मचारी आदि त्यागी तपस्वियों को आते–जाते देखा। सो उसने भी सोचा कि क्यों न मैं त्यागी भेष बना लूँ? उसने ब्रह्मचारी का भेष बनाकर थोड़ी बहुत तपस्या प्रारंभ कर दी। वह दिखावा ज्यादा ही करता था। सो भोली–भाली जनता में उसकी प्रसिद्धि बढ़ने लगी। वह शांतिनाथ जिनालय के आस–पास आया। वहाँ उसने वैसी ही तपस्या आदि से प्रसिद्धि पाई। सो सेठ भी प्रभावित था। सेठ को व्यापार आदि कार्यों से कुछ महिनों के लिए दूर जाना था। उसे मंदिर की चिंता हुई। तो उसने ब्रह्मचारी के पास जाकर कहा–

हे ब्रह्मचारी जी, मैंने विशेष धन खर्च करके मंदिर का निर्माण कराया है, रत्नों की प्रतिमाएँ बनवाई हैं। चोरी आदि से सदा सावधान रहता हूँ। मुझे कुछ महिनों के लिए व्यापार आदि कामों से दूर जाना पड़ रहा है। यदि आप मेरा निवेदन स्वीकार करें और मेरे आने तक शांतिनाथ जिनालय को संभालें तो आपका उपकार होगा।

ब्रह्मचारी भेषधारी चोर के मन की मुराद पूरी होने वाली थी, परन्तु उसने उतावलापन न दिखाकर कहा–

हे सेठजी, हम त्यागियों को मंदिर का बंधन भी उचित नहीं है, हमने मंदिर के संभाल के लिए घर नहीं छोड़ा है। इसलिए आप कोई अन्य व्यवस्था करके जाइए।

सेठ ने कहा– हे ब्रह्मचारीजी, आप कह रहे हैं, वह सत्य है, परन्तु इस समय कोई अन्य उपाय भी नहीं दिख रहा है, अतः आपसे निवेदन करना उचित समझा था। फिर भी आपकी इच्छा नहीं हो रही है,तो कोई बात नहीं, जब कोई व्यवस्था हो जायेगी, तभी बाहर जाऊँगा।

ब्रह्मचारी भेषधारी चोर ने सोचा चोरी का मौका तो हाथ से जानेवाला है, तब उसने सेठ से कहा–

हे सेठजी, आप परम दयालु दिखते हो, आपकी भावना को देखकर मुझे आपका कहा हुआ मान लेना चाहिए। आप जल्दी आइए, तब तक मैं मंदिर की संभाल कर लूँगा।

सेठ शांतिनाथ मंदिर ब्रह्मचारी भेषधारी चोर को संभलवाकर व्यापार के लिए दूसरे देश में चला गया।

सेठ के जाने के बाद ब्रह्मचारी भेषधारी चोर ने अपना मन पसंद काम शुरू कर दिया। उसने मंदिर में आने वाला (चढ़ने वाला द्रव्य) चढ़ावा माली को न देकर अपने कब्जे में कर लिया, वह खुद ही उसका उपभोग करने लगा। मालामाल बनने की इच्छा से मंदिर की वस्तुओं को बेचने लगा। सोने चांदी के बर्तनों को धीरे–धीरे एक–एक कर बेचने लगा। उसने उन बर्तनों के स्थान पर पीतल आदि के नकली बर्तन रख दिये। लोगों के पूछने पर बताता था कि सेठजी यहाँ नहीं हैं, जमाना बदल गया है, चोरियाँ बढ़ गई हैं, अतः उनको सुरक्षित रखा है।

तीव्र पाप के कारण वह बीमार हो गया। सच है–

अन्यक्षेत्रे कृतं पापं , धर्मक्षेत्रे विनश्यति।

धर्मक्षेत्रे कृतं पापं , वज्रलेपो भविष्यति।।

अर्थः–अन्य स्थान पर किया हुआ पाप धर्मक्षेत्र में नष्ट होता है, (परन्तु) धर्मक्षेत्र में किया हुआ पाप वज्र का लेप बन जाता है।

उसे बड़ी–बड़ी बीमारियाँ घेरने लगीं। उसने सोचा अब इन मूर्तियों में से रत्नों की मूर्तियों की चोरी करके यहाँ से चले जाना चाहिए। बहुत दिन हो गये हैं, मूर्तियों की चोरी करके अब पुनः पुराने भेष में जाना चाहिए। यह सोचकर उसने रत्नों की मूर्तियाँ चुरायीं, भेष बदला और रात को ही अंधेरे में निकल गया।

संयोग से दूसरे दिन प्रातः सेठ लौट आया। सेठ के आते ही मूर्तियों की चोरी आदि बातें उसके पास पहुँची। सेठ ने चुपचाप अकेले ही तलाश की। कई जगह तलाशने के बाद एक जगह वह चोर दिखा। सेठ धीरे से उसके पास गया। उससे कहा–

हे ब्रह्मचारी जी, आपने वह पवित्र भेष क्यों छोड़ा? संयम का मार्ग किसी–किसी महा सौभाग्यशाली को ही मिलता है। आप तो सौभाग्यशाली थे, जिसे वह मार्ग मिला था। **रागी–भोगी तो बिना खोजे ही सब जगह मिलेंगे, त्यागी खोजने पर भी विरला ही मिलता है**। आप हो सके तो पुनः उसी मार्ग को अपनाइए।

चोर बोला– सेठ जी, धन्य है आप, धन्य है आपका धर्म, धन्य है आपकी निष्ठा, उदारता, क्षमाभाव। आप जानते हैं कि मैं चोर हूँ। मैंने चोरी की है। चोरी भी घरों के किसी सामान की नहीं, अपितु देवताओं के द्रव्य की, मंदिर के सामान की, जिनेन्द्र भगवन्तों की मूर्तियों की और सबसे बड़ी भक्तों की आस्था की चोरी की है। इतने बड़े चोर से भी आप प्रेम से बोल रहे हैं। आप चाहते तो रक्षक (पुलिस) के द्वारा पकड़वा

कर जेल भिजवा सकते थे, लोगों को बताकर पिटवा सकते थे, पर आपने उदार भाव से क्षमा कर प्रेम से धर्म का मार्ग ही बता रहे हो, धन्य हो, आप महान हो।

सेठ– हे भद्र, **कोई जीव अच्छा, कोई बुरा नहीं होता। सभी जीव समान हैं। केवल जीव के परिणाम अच्छे या बुरे होते हैं,** राग, द्वेष के परिणाम करने वाला जीव बुरा कहलाता है, वीतराग, निर्मल परिणाम करने वाला जीव अच्छा कहलाता है। आपने अब बुरे परिणाम छोड़ दिये हैं, इसलिए अब आप अच्छे हो गये हो। कुछ समय पहले आपके परिणाम बुरे थे, उस समय तक ही आप बुरे थे।

हे भद्र, जरा सोचो तो, किसी को गाली देकर सही मार्ग पर कैसे लाया जा सकता है? समझाकर ही लाया जा सकता है। इसलिए मुझे समझाने का मार्ग अच्छा लगता है।

यदि मैं रक्षकों से पकड़वाता, जेल भेजता या लोगों से पिटवाता तो इसमें आपका सन्मार्ग का रास्ता बंद कर देता। दूसरी बात यह कि लोगों का त्यागियों से विश्वास उठ जाता। लोग तो सच्चे त्यागियों को भी ढोंगी ही समझते। इसमें अनन्त त्यागियों का अपमान होता।

चोर– हे महा उपकारी धर्मात्मा सेठजी, आपके मुझ पर अनन्त उपकार हैं। मैं आपके सामने पंचपरमेष्ठी की साक्षी पूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब मैं कभी झूठ, चोरी आदि नहीं करूँगा धर्म के सत्य मार्ग पर ही चलूँगा। यह कहकर उस चोर ने सभी मूर्तियाँ सौंप दीं और मंदिर के अन्य पात्र भी। अब वह जीव चोर नहीं, बल्कि एक सज्जन धर्मात्मा हो चुका था।

सेठ मूर्तियों को लेकर आया। लोगों से कहा रत्नों की कीमती मूर्तियों को सुरक्षित रखने के लिए मैंने ही कहा था। अब धूमधाम से विधिविधान करते हुए इन मूर्तियों को पुनः

स्थापित करेंगे। सेठ ने वैसा ही किया। विधिविधान पूर्वक उन जिनेन्द्र प्रभु की मूर्तियों को स्थापित कराया।

चोर जो अब धर्मात्मा बन चुका था, परन्तु जिनमंदिर में मूर्ति आदि की चोरी के महापाप से कई बीमारियों से ग्रसित हो गया। शरीर में कोढ़ हो गया। शरीर के अंग– अंग गलने लगे। शरीर से सब ओर से बदबू आने लगी। कोई पास नहीं आता था। पानी पिलाने वाला कोई नहीं रहा। भूख और प्यास के तीव्र कष्टों को भोगते हुए तड़प–तड़प कर मरा। मरकर वह धर्मक्षेत्र में किए पाप के फल से सातवें नरक गया। तैतीस सागर (असंख्यात वर्ष) तक नरक के तीव्र दुःख भोगे। वहाँ से निकल कर महामत्स्य बना। उसके बाद पुनः नरक गया। वहाँ से निकल कर त्रस,स्थावर आदि अनेक तिर्यंच (पशु) गति की नीच पर्यायों में भटका।

उस चोर का जीव भटकते–भटकते अनेक जन्म मरण करते–करते मंदिर की चोरी का पाप कम होने पर एक नगरी में भोगरति नाम के सेठ की भोगवती नामक महिला के गर्भ में आया था। अभी भी उसका पाप समाप्त नहीं हुआ था। जैसे ही वह गर्भ में आया भोगरति, जो उसके पिता थे, उनकी मृत्यु हो गई। जैसे–जैसे गर्भ बढ़ता गया, वैसे–वैसे एक–एक कर नजदीकी रिश्तेदारों की मृत्यु होती गई। धीरे–धीरे घर का धन भी नष्ट होता गया। उसके जन्म तक खेती, व्यापार आदि समाप्त हो गए। घर में दरिद्रता ने डेरा जमा लिया। गर्भ के तीव्र पापी जीव के निमित्त से भोगवती को भयानक दोहले इच्छाएँ होते थे, उसके परिणाम संक्लेश के होते थे। उसके सारे शरीर में खाज, खुजली आदि भयानक बीमारियाँ उत्पन्न हो गई। यह निमित्तों का ही प्रभाव कहना चाहिए कि तीर्थङ्कर बालक के संयोग से तीर्थङ्कर की माता देवियों द्वारा पूछे गए

गूढतम प्रश्नों के उत्तर देती हैं तथा दूसरी ओर पापी जीव के संयोग से भोगवती जैसी माताएँ रोगों से ग्रस्त हो जाती हैं।

असहाय, धन और परिवारजन से हीन भोगवती ने बालक को जन्म दिया। घर में खुशी मनाने के लिए कोई नहीं था, न उत्सव था। चारों ओर सन्नाटा और वीरानी थी।

दरिद्रता के कारण हितकारी पथ्य और पानी उसके पास नहीं थे। फिर भी माता और पुत्र जीवित रहे। क्योंकि पाप का फल भोगने के लिए प्राणी भयंकर संकट में भी जीवित ही रहते हैं। बिना फल भोगे कर्मों से छुटकारा नहीं है। पापबन्ध के कारण वह बालक पापकर्म का फल भोगने के लिए उपचार के बिना ही जीवित रहा। वह उस नगर की सेठानी थी, परन्तु पाप के उदय से वह इतनी दरिद्र हो गई कि अपना पेट भरने के लिए भोगवती दूसरों के घरों में मजदूरी का काम करने लगी। पुत्र का पालन करने के लिए भोगवती को दूसरों के घर मजदूरी जैसा मानसिक और शारीरिक कष्ट सहना पड़ता था। सच है कि–

पुत्रार्थं सहते माता मोहात्कष्टपरम्पराम्।

अर्थः–माँ बेटे के लिए मोह के वशीभूत अनेक कष्ट सहन करती है।

नानृणीभवितुं मातुरत्र केनाऽपि शक्यते।
यस्या मर्त्यभवं प्राप्य लभतेऽभ्युदयं नरः।।

अर्थः–जिससे मनुष्य पर्याय प्राप्त कर मनुष्य अभ्युदय को प्राप्त होता है, उस माता से इस संसार में कोई भी ऊर्ऋण नहीं हो सकता।

माता भोगवती ने देखा कि जब से यह बालक गर्भ में आया है, तब से धन जाता रहा, सगे–सम्बन्धी या तो मरने लगे या दूर होने लगे, इसका अर्थ यह हुआ कि इस जीव ने पूर्व में

पुण्य कार्य नहीं किए, अपितु पाप के कार्य ही किये हैं। इसलिए उसने इस बालक का नाम **अकृतपुण्य** (नहीं किया है, पुण्य जिसने) रख दिया ।

दूसरों के घर काम करते–करते उसने बच्चे का पालन–पोषण किया। दिन बीतते देर नहीं लगती। बालक अकृतपुण्य बारह वर्ष का हो गया।

भोगवती के घर काम करने वाला एक नौकर था, जिसका नाम सुकृत था। इस समय वह अनेक खेत आदि सम्पत्ति का मालिक बना हुआ था। उसने आज खेत पर काम के लिए मजदूर बुलाये थे। अकृतपुण्य बालक अब माँ के कष्टों को समझने लगा था। उसने कई बार सोचा कि उसे भी काम करके माँ के कष्टों को दूर करना चाहिए। परन्तु उसे समझ नहीं आ रहा था कि क्या करे?

सुकृत के खेत पर मजदूर काम करने के लिए जाने लगे। तब उसने सोचा– ये काम करने के लिए जा रहे हैं, मैं भी इनके साथ जाकर काम करूँगा। इनके साथ घर आ जाऊँगा। मजदूरी लाकर माँ को दूँगा, माँ खुश हो जायेगी, उसके कष्ट कम हो जायेंगे। वह माँ को बताये बिना घर से चल दिया ।

मजदूरों के साथ उसने दिनभर काम किया । सबने अपनी मजदूरी में एक प्रस्थ चने ले लिये। परन्तु अकृतपुण्य छोटा होने से दिखाई नहीं दिया, सो उसे मजदूरी के चने नहीं मिले, तब किसी मजदूर ने सुकृत से कहा– हे साहू सुकृत! हम सबको अपनी–अपनी मजदूरी दी गई। परन्तु इस भोगवती के बालक को नहीं दी है। इसने भी हमारे साथ आपके खेत पर दिन भर मजदूरी की है, इसे भी मजदूरी दी जाये। जब अकृतपुण्य मजदूरी के लिए सामने आया, तब उसे देखकर

सुकृत ने उसे पहिचान लिया। उसने सोचा– सचमुच जिनवाणी में सच ही कहा है कि पुण्य–पाप का कोई भरोसा नहीं, कब बदल जायें? कैसे दिन आये हैं? कब पुण्य समाप्त हो और कब पाप का उदय आजाये कोई नहीं जानता– एक दिन वह था, जब मैं इनके घर नौकर था। एक दिन यह भी है– जब मालिक ही नौकर के खेत पर मजदूरी करने के लिए आया है। उसने उस अकृतपुण्य को नमस्कार कर कहा–

हे मालिक! यह सब आपका ही है। आप चाहे जो, चाहे जितना ले जाइए।

अकृतपुण्य को उसकी बातें समझ में नहीं आयीं। उसे यह भी समझ में नहीं आया कि यह मुझे मालिक क्यों कह रहा है? मैं तो मजदूर हूँ।

अकृतपुण्य ने कहा– मैं मालिक नहीं, मजदूर हूँ। इसलिए मुझे भी वही मजदूरी दी जाये, जो मेरी मेहनत की है।

सुकृत ने विचार किया कि ये खेत आदि तो इन्हीं के हैं, मैं तो नौकर मात्र था। मुझ पर इनके बहुत उपकार हैं। मुझे भी इनका उपकार करना चाहिए। इनकी दरिद्रता दूर करनी चाहिए। इसलिए उसने रत्नों से भरा कलश घर से मंगवाकर अकृतपुण्य को देते हुए कहा–लीजिए मालिक।

अकृतपुण्य के तीव्र पाप के उदय के कारण वे रत्न उसे अंगारे जैसे दिखे।

उसने सुकृत से कहा – हे सेठ, आप सबको मजदूरी में चने दे रहे हो, पर मुझे ये अंगारे क्यों दे रहे हो?

सुकृत विचार करता है कि अभी इनके पाप का उदय शांत नहीं हुआ है। तभी तो इनको रत्न भी अंगारे दिख रहे हैं। उसने सोचा कि मेरे हाथ का रत्नजड़ित कड़ा इन्हें देता हूँ। जब सुकृत उसे हाथ का रत्नजड़ित कड़ा देने लगा, तब

अकृतपुण्य के तीव्र पाप के उदय से उसे वह सूतली से बना कड़ा दिखा, अकृतपुण्य ने कहा – सबको मजदूरी में चने दे रहे हो, मुझे सूतली क्यों? मैं इस सूतली का क्या करूँगा?

सुकृत ने सोचा इनका सचमुच बहुत ही तीव्र पाप का उदय चल रहा है। जिस कारण इनको सोना भी सूतली दिख रहा है। अब मैं इनका क्या उपकार करूँ? यह सोच उसने कहा–

हे स्वामी, इस खेत के, इस फसल के आप ही स्वामी हो, इसलिए आप जो चाहो, जितना चाहो, ले जाइए।

तब उस अकृतपुण्य ने अपने पास के एक पुराने कपड़े में चने भर लिये। चने बांधकर सबके साथ चल दिया। दिनभर मजदूरी के परिश्रम से उसे बहुत जोर की भूख लगी थी। वह तेज कदमों से चलने लगा। जिस कपड़े में चने बांधे थे, उस पुराने कपड़े में दो–चार छेद थे। देखो, **पाप के उदय से अपने द्वारा कमाई गई चीजें भी भोग में नहीं आतीं।** सो जब तक वह घर पहुँचा, तब तक बहुत से चने तो रास्ते में ही गिर गए, थोड़े से ही चने बचे थे।

इधर उसकी माँ भोगवती उसे न देखकर घर–घर ढूँढती रही, परन्तु वह कहीं नहीं मिला। उसने आँखों में आँसू लिए कई बार घरों के चक्कर लगाए, पर वह नहीं मिला। गाँव में कहीं भी नहीं मिला, जब वह गाँव के बाहर आई, तब उसे मजदूरों के झुण्ड के पीछे आता हुआ अकृतपुण्य दिखाई दिया। वह समझ गई कि हमारी गरीबी के कारण वह मजदूरी के लिए गया है। हाय, यह गरीबी क्या चीज है? मासूमों की मासूमियत खत्म करती है और मासूमों पर बड़ों का बोझ लाद देती है। जब भोगवती की निगाह उसकी पोटली पर गई, तब

उसने देखा कि चने पोटली से गिर रहे हैं, गिरकर थोड़े से ही रह गए हैं। सच है–

दूरभाग्यवतां भद्र हस्ते स्थितं विनश्यति ।

अर्थः– भाग्यहीन मनुष्यों के हाथ में आई हुई वस्तु भी नष्ट हो जाती है। उसे यह समझते देर नहीं लगी कि मेरे पुत्र का पाप उदय तीव्र है। उसने पुत्र का आलिंगन किया। आँसुओं से (अपना) मुँह धोया। वह ऐसे करूण स्वर से रोई कि सुननेवालों की आँखे भी नम हो गईं। रोते हुए उसने बालक से पूछा– हे पुत्र! तू कहाँ चला जाता है? मैंने तुझे सब जगह देखा तू कहीं नहीं दिखा तो मेरा हृदय टूट गया। बिना बताये घर से मत जाया कर। उसके बाद वे दोनों घर गए। हाथ–मुँह धोकर भोजन किया। जब वे दोनों बैठ गए, तब अकृतपुण्य ने बताया–

माँ अपनी गरीबी देखकर, आपके कष्टों को दूर करने की सोचकर, आपको बिना बताये मैं सुकृत नाम के सेठ के खेत पर मजदूरी करने गया था, वहाँ दिनभर मजदूरी करके शाम को मजदूरी देने का समय आया, तब औरों को मजदूरी दे दी गई, लेकिन मैं छोटा होने से दिखा नहीं, इसलिए मुझे वह सेठ मजदूरी देना भूल गया, तब मेरे साथी मजदूर ने कहा– हे सेठ, हमारे साथ इस भोगवती के पुत्र ने भी मजदूरी की है, इसे भी मजदूरी दी जायें। तब ''यह भोगवती का पुत्र'' इस तरह बार–बार बोलता हुआ वह मेरी ओर लगातार देखने लगा, बाद में उसने कहा– हे मालिक, ये खेत आदि सारी सम्पत्ति आपकी ही है, मैं तो आपका सेवक हूँ, मैं आप को क्या मजदूरी दूँ? आप हमारे मालिक हैं। आप सारी सम्पत्ति ले लीजिए। हमें सेवक ही समझिए।

मुझे लगा वह सेठ मेरे साथ मजाक कर रहा है, सो मैंने कहा– सेठजी, हमें तो सिर्फ हमारी मजदूरी दे दीजिए।

तब उस सेठ ने कुछ विचार करके घर से रत्नों से भरा स्वर्णकलश मंगवाया और मुझे देते हुए कहा– हे मालिक, यह आपका ही है लीजिए।

हे माँ, मैंने सुना है कि–

अदत्तं लभ्यते नैव दत्तं मातर्न नश्यति ।

परेण दीयते लक्ष्मीर्नैषा गीः सत्यमाश्रिता ।।

अर्थः–बिना दिया मिलता नहीं है और दिया हुआ नष्ट नहीं होता है। लक्ष्मी दूसरे के द्वारा नहीं दी जाती है, यह कहावत सत्य है।

हे माँ, मैंने पहले कभी दान नहीं दिया होगा, इसलिए मुझे लक्ष्मी कैसे मिलेगी? उसने ज्यों ही वह स्वर्णकलश देना चाहा, वैसे ही मेरे तीव्र पाप के कारण रत्नों के स्थान पर मुझे अंगारे दिखने लगे, इसलिए मैंने कहा– सेठजी, अंगारे देकर मेरा मज़ाक क्यों कर रहे हो? मुझे तो मेरी मजदूरी दे दीजिए।

तब उस सेठ ने कुछ सोचकर मुझे हाथ से सोने का कड़ा निकाल कर देते हुए कहा– यह सोने का कड़ा लीजिए। मुझे वह सूतली दिखी। मैंने सेठजी से कहा–

हे सेठ, मेरे पास पुण्य नहीं है, इसलिए मेरी समझदार माँ ने मेरा नाम अकृतपुण्य रखा है। हे सेठजी, लेने के लिए भी पुण्य चाहिए, सो मेरे पास नहीं है, आप तो मुझे औरों की तरह मजदूरी दीजिए, तब उस सेठ ने मुझसे कहा– आप अपनी मर्जी से जो चाहिए, सो ले जाइए। मैंने औरों की तरह मेरे पास रखे कपड़े में चने भर लिए। लेकिन हे माँ देखो, मेरे पाप के उदय को, उस कपड़े में भी अपने आप छेद हो गए। रास्ते में चने गिरते गए, वजन हल्का होता जा रहा था, पर घर आने की खुशी और तीव्र पाप के उदय से उस ओर ध्यान गया ही नहीं। घर आते–आते इतने चने बच पाए।

तब भोगवती ने सोचा, आज मेरे बेटे ने जो पुण्य–पाप की बातें कही, उससे ऐसा लगता है कि यह जीव है तो भव्य, पर अज्ञान में किए पापों के उदय उसे आज भी दरिद्र किए हुए हैं। कोई चिंता नहीं, ये उदय भी टल जायेंगे। उसके अच्छे दिन आ जायेंगे। उसने अपने बेटे से लाड़ दुलार करते हुए कहा –

बेटे, मजदूरी इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितनी तुम्हारी बातें कीमती हैं। तू भव्य है, तभी तुझे ऐसी बातें सूझ रही हैं।

बेटा, इन्हीं पुण्य–पाप की बातों पर दृढ़ विश्वास रखना, तुम्हारा अवश्य ही कल्याण होगा। मुझे आज लग रहा है कि मैंने तुम्हारा अकृतपुण्य नाम गलत रखा है।

अकृतपुण्य ने बीच में टोकते हुए कहा– नहीं माँ जब गर्भ में आते ही पिता की मृत्यु हो गई हो, गर्भ बढ़ते–बढ़ते रिश्तेदारों की मृत्यु हो गई हो, बचे हुए रिश्तेदारों ने मुँह मोड़ लिया, धीरे–धीरे धनसम्पदा समाप्त हो गई हो ऐसे में कोई भी माँ अपने बेटे का ऐसा ही नाम रखती। इसमें आपकी कोई गलती नहीं ।

भोगवती–बेटा, उस समय तुम्हारा यही नाम सही लगा, पर आज की बातों से पक्का लग रहा है कि तुम्हारा अकृतपुण्य नाम गलत है। हे पुत्र! दया, दान नहीं करने से, धन को सिर्फ भोगों में ही खर्च करने से, परोपकार न करने से, मंदिर आदि के देवद्रव्य को खाने से यह जीव घोर दुर्गति में भयानक कष्ट भोगता है। हमारी तरह दरिद्रता को भोगता है। तब अकृतपुण्य ने कहा– हे माँ आज से मैं बुरे पाप के काम नहीं करूँगा।

भोगवती ने कहा– बेटा, **संसार पुण्य–पाप का ही खेल है। पुण्य से अच्छे संयोग, पाप से बुरे संयोग मिलते हैं। लगातार पुण्य या लगातार पाप प्रायः किसी के नहीं होते है।**

पुण्य के बाद पाप, पाप के बाद पुण्य का उदय आता ही रहता है। सदा धैर्य रखना चाहिए।

"पुण्य उदय जिनके तिनके भी नाहीं सदा सुख साता।"

देख बेटा, हम पुण्य के उदय से इस गांव के स्वामी थे। सुकृत पाप के उदय से हमारा नौकर था। आज हमारे पाप का उदय आया है और सुकृत के पुण्य का उदय आया हुआ है। सो सुकृत सेठ बन गया और तुम पाप के उदय से उसके नौकर। अब तुम्हें समझ में आ गया होगा कि वह तुम्हें मालिक क्यों कह रहा था? वैसे वह स्वामीभक्त है।

हे बेटे! अब यहाँ से चलते हैं। क्योंकि जहाँ के तुम स्वामी थे। वहाँ मजदूरी करते अच्छे नहीं लगते हो। अब तुम्हें यहाँ अच्छा नहीं लगेगा। हमें मेहनत–मजदूरी करके ही पेट भरना पड़ेगा, तो क्यों न हम ऐसी जगह जायें, जहाँ हमें कोई पहिचानता न हो। यहाँ मजदूरी में शरीर के परिश्रम के साथ मानसिक क्लेश, दुःख होगा। इसलिए यहाँ से किसी दूसरी जगह चलते हैं। अब तुम कुछ–कुछ समझने लगे हो। यहाँ हमारा आत्मसम्मान, गौरव नहीं रहेगा। कहा है –

वरं वनफलाहारो वने वल्कलवेष्टनम्।
वरं शष्पासनं तार्णं न निर्मानं वरं पुरम्।।

अर्थः–वन में वन के फलों का आहार करना अच्छा है, वल्कलों का धारण करना अच्छा है, घास–फूस का आसन बिछाना अच्छा है, परन्तु गौरव से रहित होकर नगर में रहना अच्छा नहीं है।

इसलिए बेटा, यहाँ से दूसरी जगह चलो। यह कहकर बेटे का हाथ पकड़ कर वह भोगवती पश्चिम दिशा की ओर चल पड़ी। चलते–चलते वह मालव नाम के देश में पहुँची। उस मालव देश में अवन्ती नाम का सुन्दर प्रदेश था। इसी अवन्ती

नाम के देश में शीशबाग नाम का एक विशाल नगर था। इस नगर में ज्यादातर वैश्य ही रहते थे। शीशबाग में अशोक नाम का समृद्ध सम्पन्न व्यापारी रहता था। उसके सात पुत्र थे। उसकी पत्नी का स्वर्गवास (देहान्त) हो चुका था।

भोगवती अकृतपुण्य के साथ अशोक के घर के बाहर रूक गई। उसे प्यास लगी थी। उतने में अशोक सेठ भी किसी कार्यवश बाहर आया। उसके चेहरे से उसे सज्जन देखकर वह पानी मांगना चाहती थी। वह कुछ बोल पाती, उससे पहले ही अशोक ने पूछा –

हे बहन, परदेशी दिखती हो? शरीर की आकृति से भले घर की लगती हो, परन्तु परेशानी में दिखती हो। आपको किसके घर जाना है?

भोगवती– भैया, यहाँ मेरा कोई नहीं है। पाप के मारे मैं अपना देश छोड़कर आयी हूँ। प्यास लग आयी। सोचा किसी साधर्मी के घर को देखकर प्यास बुझा लूँ। सो हे भाई! आप सज्जन, धर्मात्मा दिखते हो। क्या हमें पानी मिलेगा?

सेठ– बहन, प्यासों को पानी, भूखों को भोजन, निशक्त की सेवा, प्रतिदिन देवदर्शन, दिन में भोजन, छानकर पानी पीना– ये ही साधर्मी सज्जनों के लक्षण हैं और हमारे कुल की परम्परा भी है। मैं यथाशक्ति इसका पालन करता हूँ। यह कहकर सेठ अशोक ने सेवक से कहकर उसे पानी पिलाया, अकृतपुण्य ने भी पानी पिया।

पानी पीकर वह जाने लगी, तब अशोक सेठ ने कहा– हे बहन, आगे कहाँ जाना है?

भोगवती– हे भाई, जहाँ दो रोटी–पानी के सहारे लायक काम मिले वहीं जाना है।

अशोक– हे बहन, मेरी पत्नी का स्वर्गवास हो चुका है। मेरे सात पुत्र हैं। हमें भोजन बनाने की समस्या है।

यदि आपको इस काम मे संकोच न हो तो आप यहीं रह सकती हो, आगे जाने की आवश्यकता नहीं है। मेरा पास ही छोटा–सा एक और मकान है। उसमें आप मेरी बहन बनकर रह लीजिए। मुझे बहन मिलेगी। मेरे बेटों की कोई बुआ नहीं है, उनको बुआ मिल जायेगी। आपके बेटे को एक मामा मिल जायेगा। उचित लगे तो रहिए।

भोगवती– भैया, आप धर्मात्मा दिखते हों। वरना इस संसार में आप जैसे लोग कहाँ मिलते हैं? धर्मात्मा भाई मिले इससे बड़ा लाभ और क्या होगा? पेट भरने के लिए रोटी, पानी तथा सिर ढकने के लिए छत भी मिलेगी। यही सोचकर अपने देश से निकली थी। सो मिल गया मानकर मैं यहीं रह लूंगी भैया ।

भोगवती उस दिन से अकृतपुण्य के साथ वहीं रहने लगी। रोज सुबह जाकर उनका नाश्ता, भोजन बनाती, फिर शाम का भोजन बनाकर लौटती। जो मजदूरी मिलती उससे अपने घर का भोजन–पानी चलाती ।

अशोक के सात पुत्र उसे बुआ कहकर पुकारते थे। कभी प्यार से, कभी क्रोध से भलाबुरा कहते थे। जब भोगवती किसी काम में होती थी, तब कोई चीज न पाकर भोगवती को कुवचन भी कहते थे। भोगवती पाप का उदय समझकर चुपचाप सहती थी। अकृतपुण्य उससे कहता था कि माँ, वे छोटे–छोटे लड़के आपसे गलत–सलत बोलते हैं। मुझे तो उन पर गुस्सा आता है, वे मुझे बुरे लगते हैं, पर आप उनसे कुछ क्यों नहीं कहतीं ?

भोगवती– बेटा, पाप का उदय हो, दरिद्रता हो तो पाप के उदय को सहने में भलाई हैं। मैं उनसे कुछ कहूँ भी कैसे? हम यहाँ नौकर हैं, वे मालिक हैं। मेरे कहने से नाराज होकर उन्होंने हमें निकाल दिया तो हम कहाँ जायेंगे? कहाँ भटकेंगे? बेटा, संसार में अशोक भैया जैसे मनुष्य विरले ही होते हैं। यह संसार दुष्टों से भरा हुआ है। हमारा इसी में भला है कि हम चुप रहें।

उस समय अकृतपुण्य के मन में विचार आता था कि मैं इन्हें मारूँ?

हे धन्यकुमार! तुमने अकृतपुण्य के जीवन में जो इनके प्रति इन्हे मारने के भाव मन में रखे थे? जो कर्म बांधे थे, वे ही अब उदय में आ रहे हैं। तथा तुम्हारे भाइयों को तुम्हें मारने के भाव आते हैं, वे तुमसे द्वेष करते हैं ।

हे धन्यकुमार ! अकृतपुण्य उनको मार नहीं सकता था, केवल मारने के भाव करता था। केवल भाव करने मात्र से जो बंध हुआ, उससे अब इस तरह का फल तुम्हें मिल रहा है। इसलिए कभी भी किसी भी जीव को किसी भी परिस्थिति में अपने भाव खराब नहीं रखने चाहिए।

भावः प्रधानः खलु कर्मबन्धे ।
भावेन बध्नाति सुकर्म जीवः सम्यक्त्वरूपेण सुखस्य हेतुम्।
भावो हि मूलं शुभकर्मबन्धे भावेन मोक्षः प्रवदन्ति सन्तः।।

अर्थः– कर्म के बन्ध में मुख्य कारण जीव का भाव ही है। जो सम्यक्त्वरूप सुख का हेतु ऐसे कर्म को जीव अपने भावों से ही बाँधता है, भाव ही शुभ कर्म बन्ध में कारण हैं। भाव से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है, ऐसा सन्त कहते हैं।

इसलिए हे धन्यकुमार! जीव को सदा भावों की शुद्धि रखनी चाहिए।

यदि हम किसी के मारने का विचार भी करते हैं, तो दूसरा जीव भी आपको मारने के विचार ही नहीं अपितु मारना ही चाहेगा। अतः किसी को मारने का विचार भी नहीं करना चाहिए।

विचारशुद्धि सबसे बड़ी शुद्धि है।

धन्यकुमार ने मुनिराज से पूछा– हे प्रभु, जगह–जगह खजाने किस कारण से मिल रहे हैं?

मुनि मुनिसुव्रत– हे धन्यकुमार उसका भी कारण कहता हूँ । सुनो–

अन्यो न तुष्टो विदधाति सौख्यं रूष्टः परो नो कुरूते हि दुःखम्।

अर्थः– कोई दूसरा पुरूष संतुष्ट होकर किसी को सुख दे नहीं सकता और रूष्ट होकर दुःख उत्पन्न नहीं कर सकता। बल्कि

चिरार्जितं येन भुनक्ति देही ।

अर्थः– यह जीव अपने चिरकाल से अर्जित कर्मों का फल ही भोगता है।

एक दिन तुम माँ के साथ थे, माँ ने नाश्ते में खीर बनाई थी। तुम उनके घर पर खीर देखकर माँ से खाने के लिए जिद करने लगे तब माँ ने कहा था– बेटा, मैं तुम्हे कैसे खीर खिलाऊँ? ऐसे उत्तम पदार्थों को खाने के लिए तुम्हारे पास पुण्य नहीं है। हम लोग नौकर हैं, बिना स्वामी की आज्ञा के मैं यह खीर तुम्हें नहीं खिला सकती।

घर आकर माँ ने आटे में मीठा मिलाकर तुम्हें दिया और कहा–

ले, यह हमारी खीर है।

अकृतपुण्य ने वह देखकर कहा– माँ वैसी खीर नहीं है।

भोगवती– बेटा वैसी खीर के लिए वैसा पुण्य भी तो चाहिए, जो हमारे पास नहीं है।

अक्सर तुम वैसी खीर की जिद करते, माँ तुम्हें घर लाकर आटे में मीठा मिलाकर वही जवाब देती थी।

एक बार बहुत जिद देखकर, सेठ के पुत्रों ने तुम्हें पीटा। तुम्हारा मुँह सूज गया। सेठ ने तुम्हें रोते देखकर मुँह सूजा हुआ देखकर भोगवती से पूछा–

बहन, इसे क्या हो गया? यह क्यों रो रहा है? इसका मुँह क्यों सूजा है?

भोगवती – कुछ नहीं भैया, **हर जीव प्रतिसमय अपने कर्मों को भोगता है**, सो यह भी अपने कर्मों का फल ही भोग रहा है।

इसी बीच सेठ के एक बेटे ने कहा– यह हमारी खीर मांग रहा था, हमने इसे मना कर दिया। यह माँ से फिर भी जिद कर रहा था, तब हमने इसे खेलने के बहाने बुलाकर पीटा है। इसलिए यह रो रहा है, हमारी पिटाई से इसका मुँह सूज गया है।

अशोक– पुत्रों, तुमने अच्छा नहीं किया। यह भी तुम्हारा (ममेरा) भाई है। इसे भी खीर आदि खाने का उतना ही हक है, जितना तुम्हारा। यह भले घर का है, इसकी माँ भी भले घर की है। नहीं तो वह अपने पुत्र को पहले खिलाकर तुम्हें खिलाती। यह सज्जन देवी ऐसा नहीं करके अपनी मजदूरी से ही अपना पेट भर रही है।

इसके बाद अशोक ने कहा– हे बहन, तुम्हारी ईमानदारी धन्य है। परन्तु मेरे आदेश से दूध, चावल, मीठा इच्छानुसार घर ले जाओ और इस पुत्र को आज से रोज भरपेट खीर खिलाया करो।

ईमानदार भोगवती ने उस दिन मात्र दो व्यक्तियों के हिसाब से दूध, चावल, मीठा लेकर घर आकर खीर बनाई। भोजन से पहले कलश लेकर पानी लेने के लिए कुएँ पर गई। जाते समय बेटे अकृतपुण्य से कहा– " बेटा, आज पहली बार हमारे घर मुनिराज को देने योग्य भोजन (खीर) बना है। अतः यदि कोई मुनिराज आयें तो ध्यान रखना, उनको आहार देकर ही हम भोजन करेंगे। " तुम्हारे पुण्य के उदय से उस दिन एक महिने भर का उपवास किए हुए ऋद्धिधारी मुनि, पारणा के लिए शीशबाग नगर में आये।

उन्हें देखकर तुम्हें माँ के शब्द याद आ गये। तुमने मुनिराज से कहा– हे महाराज, आज हमारे घर अच्छा भोजन बना है, खाकर जाइए, माँ अभी आती ही होगी।

तुम बालक थे, तुम्हें पड़गाहन विधि का ज्ञान नहीं था। सो मुनि आगे जा रहे थे। तुमने सोचा– मुनिराज गए तो मैं माँ को क्या जवाब दूँगा? माँ सुनेगी तो मुझे खीर नहीं देगी, कहेगी तूने मुनिराज को क्यों जाने दिया? यह सोच तुमने मुनि के पैर कसकर पकड़ लिए। कहा– महाराज, मेरी माँ मुझे खीर नहीं देगी। आप खाकर ही जाइए। फिर हम लोग खायेंगे। यह कहकर तुम जोर जोर से आँसू बहाकर रोने लगे। उतने में उधर से कलश लेकर तुम्हारी माँ आ गई।

मुनि ने उस दिन प्रतिज्ञा की थी कि जल भरा कलश लेकर महिला दिखे तथा बालक की आँखें आँसुओं से भरी हो तो ही आहार लेंगे (नहीं तो नहीं)।

सो उनकी आकड़ी (प्रतिज्ञा) पूरी हुई थी तथा तुम्हारी माँ ने उन्हे पड़गाहन विधि से पड़गाहा, आहार दिया।

मुनि के आहार के पश्चात् तुम्हारे घर पर देवों ने पाँच आश्चर्य किए गंधोदक, सुरपुष्पवृष्टि, रत्नवर्षा, दुन्दुभि,

सुखदवात। मुनि अक्षीण महानस ऋद्धि के धारी थे। इसलिए उनके आहार करने पर भी खीर कम नहीं हुई। तब समझदार भोगवती ने बेटे से कहा– हे बेटे, तुम्हारे पुण्य के उदय से आज ऋद्धिधारी मुनि को आहार दे पाये हैं। देख, उनके पुण्यप्रताप से खीर कम नहीं हुई है। इसलिए आज हम सब नगरजनों को खीर खिलाने के पश्चात् भोजन करेंगे।

मुनिराज के आहार की चर्चा चारों ओर फैल गई। अनेक लोग आये। भोगवती ने सबको खीर का भोजन कराया। अकृतपुण्य ने और भोगवती ने शाम तक अन्न का एक कण भी नहीं खाया था। शाम तक जब सभी लोग खाना खा चुके, उसके बाद अकृतपुण्य ने और भोगवती ने भोजन किया।

हे धन्यकुमार! मुनिराज के आहारदान के निमित्त से जो पुण्यसञ्चय हुआ, उससे तुम्हें इस जन्म में जगह–जगह खजाने प्राप्त हो रहे हैं।

इससे पूर्व तुम पहले सौधर्म स्वर्ग में वैमानिक देव बने उसका कारण सुनो, वह कारण इस जन्म में खजाने मिलने में भी सहयोगी है। उसकी कथा भी सुनो–

भोगवती और अकृतपुण्य की चारों ओर कीर्ति फैल गई। सभी उनका सम्मान करने लगे। उनको सम्मान की दृष्टि से देखने लगे। वास्तव में पुण्यकार्य किसे कीर्ति और सम्मान नहीं दिलाते? अर्थात् पुण्यकार्य सदा कीर्ति और सम्मान ही दिलाते हैं।

एक दिन सेठ अशोक का गाय–बछड़े चरानेवाला ग्वाला नहीं आया। सो सेठ ने अकृतपुण्य से कहा–

हे भानजे ! गाये चरानेवाला ग्वाला अभी तक नहीं आया है, काफी देर हो चुकी है। यदि वह नहीं आया तो गायें, बछड़े दिन भर भूखे रहेंगे। ग्वाले को जरूर कोई विशेष

परेशानी हो गई होगी। नहीं तो वह जरूर आता, यदि दिक्कत न हो तो भोजन कर व भोजन साथ लेकर दिन–दिन में गायें चराकर सूर्यास्त से पूर्व ही घर आ जाना।

"ठीक है" कहकर अकृतपुण्य गाय और बछड़े लेकर जहाँ विशेष घास थी, ऐसे घने जंगल में गाये चराने ले गया। संयोग से उस समय तेज बारिश शुरू हो गई। बारिश इतनी तेज थी कि पास के गाये–बछड़े भी नहीं दिख रहे थे। बारिश की तेजी से गाय–बछड़े तो घर की ओर चले गये। बारिश होती रही लगातार शाम तक। जब शाम को बारिश रूक गई, तब अकृतपुण्य ने देखा कि गाये और बछड़े नहीं हैं। वह गायों व बछड़ों को इधर–उधर ढूँढने लगा, परन्तु वे कहीं भी दिख नहीं रहे थे। वह उनको वन में ढूँढता रहा, इस प्रकार रात हो गई। वह डर के मारे घर नहीं गया। रात होने पर भी अकृतपुण्य के नहीं आने से उसकी माँ भोगवती और सेठ अशोक दोनों परेशान हुए। भोगवती रोने लगी। उसे रोता देखकर सेठ अशोक ने कहा– बहन भोगवती, दुःखी मत हो, "उसे ढूँढकर अभी लाता हूँ"। ऐसा कहकर सेठ अशोक बड़ा–सा डण्डा हाथ में लिए अकृतपुण्य को ढूँढने गया।

अकृतपुण्य मामा अशोक को हाथ में डण्डा लिये आते देख डर गया। उसने सोचा– गाये–बछड़े नहीं दिखने से मामा नाराज होकर मुझे पीटने आये हैं। भय से उसकी आत्मा काँप उठी। वह सेठ अशोक से विपरीत दूसरी दिशा में वन में भाग गया। मामा अशोक ने उसे आवाज देकर रोकना चाहा। कहा कि–

अरे भानजे, घर लौट चलो, गाय–बछड़े घर पहुँच चुके हैं। डरो मत। अकृतपुण्य का हृदय भय से टूट चुका था, इसलिए उस पर अशोक के शब्दों का कोई असर नहीं हुआ।

उल्टा वह और तेज गति से भागा कि मामा, झूठ बोल रहे हैं। वह किसी उपाय से मुझे पकड़कर पीटना चाहते हैं।

अकृतपुण्य बहुत ही तेजगति से भागकर जंगल में लगातार दौड़ता रहा। सेठ ने उसकी बहुत देर तक खोज की। परन्तु वह नहीं मिला। ज्यादा रात होने पर अशोक तो लौट आया। उसे अकेला देखकर भोगवती अनेक आशंकाओं से घिरकर रोने लगी। उसका बुरा हाल था। वह तरह–तरह से रोने लगी। सेठ ने उसे समझाया कि बहन, तुम चिंता मत करो। कल सुबह बहुत जल्दी सेवक आदि को लेकर जंगल का कोना–कोना छानकर उसे ढूँढकर लाऊँगा। वह मुझे दिखा था, मैने उसे रोका, बुलाया, गाये–बछड़े घर पहुँच गए– यह भी बताया, पर वह रूका नहीं, वह तो जंगल में आगे की ओर भागता ही गया, मैंने उसका पीछा किया, पर वह बाद में दिखा नहीं, रात ज्यादा होने से मैं लौट आया कल सुबह जल्दी जाकर उसे अवश्य ढूंढकर लाऊँगा। इसलिए रोओ मत, शोक मत करो। रोने, शोक करने से पाप का ही बंध होता है।

भोगवती– भैया, रात भर वह बालक घने जंगल में कैसे सुरक्षित रहेगा? सुबह तक जीवित रहेगा या नहीं? मैं अभी जाकर उसे ढूँढकर लाती हूँ।

सेठ अशोक– हे बहन, दुःखी मत हो। रात को वहाँ घना अंधेरा रहता है। अपने ही एक हाथ को दूसरा हाथ नही दिखता , उसे कैसे ढूँढोगी? निश्चिंत रहो, आयुकर्म उसे जीवित रखेगा। कुछ घंटों की ही तो बात है।

इधर अकृतपुण्य रात को घने अंधरे में जिधर सूझा, उधर ही चलता गया। चलते–चलते वह थक गया, तब एक गुफा के पास रूक गया। गुफा के भीतर **वीर** नामक मुनिराज थे। अकृतपुण्य गुफा के द्वार पर पत्थरों के सहारे रूक गया।

भीतर मुनिराज होने के अहसास से अकृतपुण्य का डर चला गया वह वहाँ शांत खड़ा रहा। यद्यपि रात बहुत ज्यादा हो गई थी, पर उसकी आँखों से नींद गायब थी। उसने रात वहीं पर बिताने का निश्चय किया। रात वहीं बितायी। सुबह होने पर किसी भव्य जीव को आगम का ज्ञान कराने के उद्‌देश्य से वीर नाम के मुनिराज ने संसार, शरीर, भोगों से वैराग्य के साथ तत्त्व का उपदेश दिया। अकृतपुण्य ने ऐसा उपदेश जीवन में पहली बार सुना था। मुनिराज समझा रहे थे कि–

शुध्दातम अद्ध पंच गुरू जग में शरणा दोय ।

इस संसार में निश्चय से अपनी आत्मा और व्यवहार से पंच परमेष्टी ये दो ही शरण हैं।

जीव शुद्धभावों से व्रत, तप, संयम के द्वारा कर्म काटकर सदा–सदा के लिए संसार के सभी दुःखों से मुक्त होता है।

संसार में सुख नहीं है। सुख के लिए विषय–कषायों का त्याग आवश्यक है।

अपनी निधि भूल आप आप दुःख उठायो।

अपने भीतर की निधि को भूलकर इस जीव ने स्वयं ही दुःख पाये हैं।

मोही बांधत कर्म को निर्मोही छुट जाय।

मोह से जीव कर्म बाँधता है, निर्मोही जीव कर्म की निर्जरा करता है।

जो शरीर होते हुए भी "मैं शरीर रहित चेतन जीव हूँ" ऐसा मानता है, वह जीवन–मुक्त कहलाता है।

मुनिराज के द्वारा बताये जा रहे तत्त्व को सुनने में अकृतपुण्य एकाग्र हो गया। उसकी बुद्धि निर्मल हो गई भावों में शुद्धि प्रगट हो गई। संवेग और वैराग्य से उसकी आत्मा

ओतप्रोत हो गई। वह शुभलेश्या से युक्त था। प्रशस्त ध्यान की विधि को जान गया था।

"मैं अपने चैतन्य का श्रध्दान करता हूँ। पाँच प्रकार के चारित्र को धारण करने की भावना भाता हूँ । क्षमादि दश धर्मों की इच्छा करता हूँ। वैराग्य की जननी बारह भावनाओं का चिंतन करता हूँ।" अकृतपुण्य इस तरह की भावों की शुद्धि में लीन था, उसी समय एक दुष्ट शेर उसके पीछे से आया, उसने उस पर पीछे से हमला किया। विकट, विकराल स्थिति में जीवन की आशा न देखकर अकृतपुण्य ने मुनि के द्वारा बताई गई समाधिमरण की विधि के अनुसार समाधिमरण हेतु सल्लेखना धारण की। इस तरह उसने समाधिमरण प्राप्त किया। शांत परिणामों के साथ उसका शरीर छूट गया ।

वह शरीर छोड़कर पहले सौधर्म स्वर्ग में रत्नों के आभूषणों से सुशोभित हुआ। दिव्य वैक्रियक शरीर को धारण करने वाला ऋद्धिधारी देव बना।

देव बनते ही उसके चारों ओर सेवक बनकर अनेक देव आये। वह सोचने लगा– यह रत्नमय प्रदेश कौनसा है? मैं कहाँ आया? कैसे आया? क्या मैंने दान दिया था या तप किया था? ऐसी सम्पत्ति कैसे प्राप्त हुई?

ऐसा विचार आते ही उसे देशावधि ज्ञान प्रगट हुआ। उससे उसने अपना पूर्वजीवन जान लिया। उसने जाना कि मैंने न दान दिया, न तप किये, मात्र उनकी भावना भाई। भावना भाने मात्र से मुझे यह वैभव मिला। जो वास्तव में दान देते हैं, तप तपते हैं, उन्हें ऐसा वैभव मिलता ही है, तथा वे कर्मनिर्जरा कर मोक्ष जाते हैं।

उसने सोचा कि उपकारी के उपकार कभी नहीं भूलने चाहिए। उपकारी के उपकार भूलनेवाला कृतघ्न एवं महापापी

होता है। मुझे संसार के तारक, दुःखों के संहारक, जीवों के पालक, दयामूर्ति, चलते–फिरते सिद्ध श्री वीर मुनि की सर्वप्रथम वंदना करनी चाहिए।

अकृतपुण्य का जो जीव अब दो सागर की आयुवाला सौधर्म स्वर्ग का देव बना, वह वीर मुनिराज की वंदना के लिए आया था। दिव्य विमान में आये उस देव ने आते ही गुफा के द्वार पर भोगवती को बेहोश देखा,

क्योंकि प्रातः होते ही भोगवती भाई अशोक और अन्य लोगों के साथ अकृतपुण्य को खोजने आयी थी। खोजते–खोजते जब वह गुफा के द्वार पर आयी, तब उसे अकृतपुण्य का क्षत–विक्षत, टुकड़े–टुकड़े हुआ शरीर देखा। उसे देखते ही वह पुत्र को इस तरह विकराल मृत्यु को प्राप्त देखकर दहाड़ मारकर गिर पड़ी, बेहोश हो गई , लोगों ने पानी के छींटे देकर उसे जागृत किया। वह अकृतपुण्य को याद कर करके बार–बार बेहोश हो जाती, लोग उसे बार–बार होश में लाते। वह रोते रोते कह रही थी–

बेटा, तू ही जीवन का सहारा था, तू ही मेरा प्यारा था, तू मुझे अकेला कर गया, बता अब मैं किसके सहारे जीवूँ, क्यों जीवूँ? मैं बड़ी अभागन हूँ, मेरे नसीब में न पति का सुख था, न पुत्र का है। जरूर मैंने पूर्वजन्म में किसी के सुख में अंतराय (बाधा) की होगी। किसी के पति, किसी के पुत्र को दूर किया होगा, तभी तो आज पति, पुत्र से कर्म के द्वारा दूर की गई हूँ। पूर्व कर्म भोगे बिना नहीं छूटते। वे भेदभाव नहीं करते। कर्म राजा, रंक, छोटा–बड़ा, धर्मात्मा–पापी कुछ नहीं देखते, अपने समय पर अवश्य ही फल देते हैं। जीव को बताते हैं कि देख, हे जीव तूने पूर्व में ऐसा किया। मैंने पूर्व में पाप किए हैं, तभी

तो ये दिन देख रही हूँ। मैं मर क्यों नहीं जाती? अब बचा ही क्या है जीवन में जो मैं जीवूँ?

इस प्रकार तरह–तरह से बोलते हुए, वह रो रही थी, बार–बार बेहोश हो रही थी।

मृत शरीर के टुकड़ों से लिपट–लिपट कर रोती हुई अपनी पूर्व जन्म की माँ को देखकर उस देव को दया आ गई। उसने सोचा– जीव पर माँ के अपार–अपार उपकार होते हैं। इसी ने मुझे पुण्यपाप का पहला पाठ पढ़ाया है। **पहली गुरू घर में माँ ही होती हैं। माँ संस्कारित हो तो बालकों को संस्कार मिलते हैं। माँ ही संस्कारित न हो तो बालक को संस्कार कहाँ से मिलेंगे? इसलिए माँ का पहला कर्तव्य है कि वह स्वयं संस्कारित हो और दूसरा कर्तव्य है कि अपनी सन्तान को संस्कारित करे। वह यह भी समझें कि सुख के लिए सम्पत्ति नहीं, संस्कार जरूरी हैं।** यह सोचकर माँ के उपकार जानने वाले उस देव ने विचार किया कि माँ के सामने देव के रूप में जाने पर वह पहिचानेगी नहीं। इसलिए उसने अकृतपुण्य का रूप बनाया। भोगवती के पास गया और से कहने लगा–

माँ, तू क्यों रो रही है? देख, मैं तो जीवित हूँ।

भोगवती रोना भूल गई। उसने मान लिया कि अकृतपुण्य जीवित है, वह न जाने किसके शरीर को अकृतपुण्य का समझ कर रो रही थी। वह ज्यों ही अकृतपुण्य के गले मिलने के लिए हाथ फैलाकर आगे बढ़ी त्यों ही वह देव थोड़ी दूर आकाश में ऊँचा उड़ गया।

भोगवती सोच में पड़ गयी कि मेरा बेटा कब से, कैसे उड़ने लगा है? वह आश्चर्यचकित हो गई, अचम्भित हो गई।

दो तीन बार वह धरती पर आया, भोगवती उसे पकड़ती उससे पहले वह आकाश में उड़ जाता। आश्चर्य पर आश्चर्य करती माँ को देख, उसने कहा–

माँ आश्चर्य मत कर। तेरा अकृतपुण्य अब स्वर्ग का देव बना है। मैं गुरू की कृपा से, धर्म की शरण से देव बना हूँ उसके बाद उसने अपनी सारी कहानी बतायी और कहा–

माँ तू शोक मत कर धर्म की शरण में जा। धर्म बताने वाले गुरूवर पास में ही हैं, गुफा में चल, सारे संसार के उपकारी वीतरागी मुनि विराजमान हैं। उन्हीं के प्रताप से मैं देव बना हूँ। हे मामा, आदि मनुष्यों, आप भी उन्हीं की शरण में जाकर जीवन में धर्म प्रकट करो। धर्म में बुद्धि लगाओ, कल्याण होगा।

कुरूष्व धर्मे दृढचित्तवृत्तिं संसारदुःखस्य यतो निवृत्तिः।

अर्थः– धर्म में मन दृढ़तापूर्वक लगाओ, जिससे संसार के दुःखों का नाश होगा।

मुझ देव को धर्म का प्रत्यक्ष फल समझो।

प्रत्यक्षमप्यस्य फलं प्रपश्य, प्रमाणसिद्धं न हि शंकनीयम्।
भावेन धर्मो विहितो हितज्ञैर्हितं ददात्येव न कोऽपि दोषः।।

अर्थः– धर्म का प्रत्यक्ष फल देखने के बाद प्रमाण–सिद्ध वस्तु में शंका नहीं करनी चाहिए। भाव से धर्म करो, क्योंकि हितैषी व्यक्ति के द्वारा किया हुआ धर्म हित को ही देता है, इसमें कोई दोष नहीं है।

हे माँ –

पुत्रो न स्वर्गाय सवित्रि पुत्री पिता न माता न च भागिनेयः।
पौत्रो न पौत्री न वधूर्न भार्या क्षमादिधर्म प्रविहाय नान्यः।।

अर्थः– क्षमा आदि धर्म के अलावा स्वर्ग प्राप्त कराने के लिए न पुत्र समर्थ है, न पुत्री, न पिता, न माता, न भानजा, न पोता, न पोती, न बहु, न स्त्री, न अन्य कोई समर्थ है।

इसके बाद वे सब **वीर** नाम के मुनिराज के पास गए। मुनिराज को नमस्कार कर वे सब यथास्थान बैठ गए। उनसे धर्म का स्वरूप समझ, सब ने धर्म का दृढ़ विश्वास कर व्रत, नियम ग्रहण किए।

भोगवती ने व्रत, नियमों का पालन इस निदान पूर्वक किया था कि मेरे भाई अशोक के पुत्र और अकृतपुण्य का जीव भावी जीवन में मेरे पुत्र बनें।

भोगवती आदि (जीव) व्रत, नियम के प्रभाव से स्वर्ग में देव बने थे।

स्वर्ग से आकर सेठ अशोक का जीव इस समय तुम्हारा पिता श्रीदत्त बना है। भोगवती का जीव स्वर्ग से आकर इस समय तुम्हारी माता देवश्री बना है। अशोक के सातों पुत्र स्वर्ग से आकर इस समय तुम्हारे भाई बने हैं। स्वर्ग से आकर पूर्वकृत पुण्य के उदय से तुम अकृतपुण्य धन्यकुमार बने हो। यद्यपि तुम सबको प्रिय हो, माँ को विशेष प्रिय हो, परन्तु अकृतपुण्य के जीवन में किए दुर्भावों के कारण भाइयों को प्रिय नहीं हो।

धन्यकुमार के पूछने पर मुनिसुव्रत नामक उन मुनिवर ने धर्म को विस्तार से बताया। धर्म का उपदेश सुनकर धन्यकुमार प्रसन्न हुआ। मुनिराज को बारम्बार नमस्कार कर आगे की यात्रा के लिए चल पड़ा।

चलते–चलते वह राजगृह नगर पहुँच गया। वहाँ वह राजगृह नगर के बगीचे में विश्राम के लिए रूका। लम्बी यात्रा की थकान के कारण वह अशोक वृक्ष की छाया में सो गया।

माली आया। माली ने देखा एक अपरिचित व्यक्ति पेड़ की छाया में सो रहा है। वह उसके पास आया। दिन ढलता देख उसे जगाया। उससे माली ने पूछा– आप कौन हो? किस देश से आये हो ?

धन्यकुमार ने कहा– हे बागवान महाशय, मुझे क्षमा कर दीजिए। मैं बिना अनुमति लिए आपके बाग में रूक गया और सो गया। मैं उज्जयिनी का निवासी एक परदेसी हूँ, परदेसी जान मुझे क्षमा कीजिए। बागवान उसकी नम्रता को देखकर समझ गया कि यह अच्छे कुल का समझदार युवक है। किसी परेशानी के कारण इसे परदेश में आना पड़ा है, इसे घर ले जाकर भोजन आदि कराना चाहिए। भूखे को भोजन कराना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होता है। यह सोचकर वह बागवान उसे घर ले गया। उसे घर ले जाकर पुष्पवती नाम की पुत्री से बोला–

बेटी, इस परदेसी सज्जन युवक अतिथि को भोजन कराओ।

पुष्पवती ने पूछा– पिताजी, ये अतिथि कौन हैं?

बागवान ने कहा– यह मेरा भानजा है। बहुत दिनों के बाद हमसे मिलने आया है। उसे भोजन कराकर पुष्पवती ने आंगन में चबुतरे पर आसन देकर बिठाया और खाना बनाने लगी, चबूतरे पर धागे और फूल रखे थे। धन्यकुमार ने समय बिताने के लिए धागे लेकर फूलों की सुन्दर–सुन्दर मालाएँ बनायीं।

पुष्पवती, उन मालाओं को लेकर राजमहल में गई। वह शीलवती, पुष्पश्री नाम की दो राजकन्याओं को मालाएँ देने जाती थी। आज उसकी सुन्दर–सुन्दर मालाओं को देखकर उन राजकुमारियों ने कहा– हे पुष्पवती, कामदेव के बाणों के समान ये मालती फूलों की कोमल मालाएँ इतने सुन्दर तरीके से

किसने गूँथी हैं? हमने इतनी सुन्दर मालाएँ आज तक नहीं देखी हैं। तब पुष्पवती ने कहा– आँखों को सुख पहुँचाने वाली ये मालाएँ, मेरे घर आये, मेरे पिता के भानजे ने गूँथी हैं।

शीलवती और पुष्पश्री राजकुमारियों ने उससे कहा– हे पुष्पवती, रोज ऐसी ही मालाएँ हमारे लिए लाया कर।

पुष्पवती बोली– जब तक वह अतिथि घर पर है, रोज लाया करूँगी। दूसरे दिन पुष्पवती मालाएं लेकर गई। तब शीलवती और पुष्पश्री ने उससे पूछा– हे पुष्पवती, वह युवक तुम्हारा पति हुआ या नहीं?

पुष्पवती ने कहा– मेरा इतना पुण्य कहा कि वह मेरा पति बने। वह तो नगर के प्रसिद्ध सेठ की पुत्री धनश्री का पति हुआ है। सच है कागली का हँस के साथ मेल भी नहीं है।

शीलवती ने पूछा– सखि, उस अमीर सेठ ने अपनी पुत्री धनश्री का विवाह उस अपरिचित युवक के साथ कैसे कर दिया?

तब पुष्पवती ने बताया– धनश्री के जन्म के समय किसी निमित्त–ज्ञानी ज्योतिषी ने बताया था कि जो एक कौड़ी से करोड़पति बनेगा, वही तुम्हारी धनश्री पुत्री का पति होगा।

वह युवक ऐसा ही निकला, वह सेठ के घर से एक कौड़ी लेकर गया था। उससे उसने फूलों को जोड़ने के काम आनेवाले तिनके खरीदे व उन तिनकों को उसने मालियों को बेचा। बदले में उसने फूल खरीदे। उन फूलों से सुन्दर मालाएं बनायीं। उन मालाओं को लेकर वह वहाँ गया जहाँ राजकुमार जुआ खेल रहे थे। राजकुमारों को मालाएँ बहुत पसन्द आयीं। मालाओं के बदले राजकुमारों ने उसे बहुत–सी मुद्राएँ दीं। इस तरह करोडपति बनकर लौटा। तब सेठ समझ गया कि

ज्योतिषियों के अनुसार वही मेरी पुत्री धनश्री का पति है। सेठ ने अपनी पुत्री और बहुत–सा धन उसे दे दिया।

किसी दूसरे दिन पुष्पवती से राजकुमारियों ने पूछा– हे सखि, क्या वह तुम्हारा पति हुआ?

तब पुष्पवती ने कहा– नहीं। वह राजगृही नगर के सेठ की पुत्री गुणवती का पति हुआ है।

वह कैसे ? पूछने पर पुष्पवती ने बताया–

गुणवती के जन्म के समय ज्योतिषी ने बताया था कि जिस दिन जिस युवक के दुकान पर आने से बहुत सा धनलाभ हो, वही गुणवती का पति होगा । वह युवक यों ही दुकान पर गया था। उसके आते ही सेठ को धन का अपार लाभ हुआ कि वह भी आश्चर्य में पड़ गया। उसे ज्योतिषी की बात याद आ गई। उसने तय किया कि यही गुणवती का पति है। सो सेठ ने अपनी पुत्री गुणवती उसे ब्याह दी।

किसी और दिन पुष्पवती फिर सुन्दर मालाएँ लेकर गई। राजकुमारियों ने फिर वही प्रश्न पूछा कि हे सखि, वह युवक तुम्हारा पति हुआ या नहीं?

पुष्पवती ने रोते हुए कहा –हे राजकुमारियों वह युवक अब तक तो मेरा पति नहीं हुआ है, परन्तु यदि तुम्हारा भाई अभयकुमार उसे नहीं मारे तो वह तुम दोनों का पति हो सकता है। उन राजकुमारियों को आश्चर्य हुआ कि यह क्या बोल रही है? वह युवक हमारा पति! उसकी हत्या, उसको मारने वाला हमारा भाई अभयकुमार! एक राजकुमारी बोली– हे सखि, तू यह क्या कह रही है? क्यों कह रही है? हमारी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है? थोड़ा ढंग से, विस्तार से बताये तो कुछ समझ में भी आये।

तब पुषवती ने कहा– हे राजकुमारियों! ध्यान से सुनो, जैसा मैंने सुना है , वैसा आप लोगों को सुनाती हूँ–

वह युवक घूमने निकला था। घूमते–घूमते वह दूर निकल गया। संयोग से ही वह उस स्थान पर सहज ही पहुँच गया, जहाँ अभयकुमार आदि राजकुमार जुआ खेल रहे थे, अभयकुमार ने उस युवक (धन्यकुमार) को छेड़ते हुए कहा–

हे कुमार, सुना है, तुम आजकल सेठों की कई युवतियों को जीत रहे हो। लेकिन इसमें कौन–सी बड़ी बात है। बड़ी बात तो तब होगी– यदि तुम हमें जुए में हराकर दिखाओ तो हम मान जायेंगे कि वाकई तुम चतुर हो। धन्यकुमार वैसे तो जुए को मजाक में भी खेलना पसन्द नहीं करता था, पर उस समय उसे उन राजकुमारों की बाते चुभ गई। उसने मन ही मन निश्चय कर लिया कि इन मूर्ख और व्यसनों में फँसे राजकुमारों को सबक सिखाना चाहिए। यह सोचकर उसने राजकुमारों से कहा– चलो देखते हैं, इसमें हमारा भाग्य कैसा है?

उसके बाद उस युवक (धन्यकुमार) ने उन सब राजकुमारों को बातों ही बातों में जुए में हरा दिया। उनसे धन, आभूषण यहाँ तक कि उनके कपड़े भी जुए में जीत लिए। लोगों के सामने हार से राजकुमारों का घोर अपमान हुआ। उन्होंने कहा– अरे युवक, जुए में भाग्य बलवान होता है , आज तुम्हारा भाग्य बलवान था, सो जीत गए। परन्तु कला परिश्रम से ही मिलती है, भाग्य से नहीं। यदि तुम चन्द्रकवेध करके दिखाओ तो तुम्हें मान जायेंगे और इतना ही नहीं, तुम्हारे साथ हमारी बहनों का विवाह भी करा देंगे। जन्मजात पुण्यात्मा उस धन्यकुमार ने बातों ही बातों में चन्द्रकवेध (घूमती हुई मछली के प्रतिबिम्ब) को नीचे रखे पानी में देखकर ऊपर बाण से निशाना

साधकर लकड़ी की उस मछली के आँख पर निशाना साधा यह सब एक ही प्रयास में कर दिखाया। हर प्रयास में हारने वाले उन राजकुमारों ने सब मिलकर विचार–विमर्श किया कि इस अनजान युवक से राजकुमारियों के विवाह को कैसे रोकें? अन्त में उन्होंने कहा–

हे धन्यकुमार! यह सही है कि तुमने हमसे हमारी बहनें जीत ली हैं। पर तुम्हारे कुल का किसी को पता नहीं है, तुम्हारे साथ हम अपनी बहनों का विवाह करेंगे, तो लोग क्या कहेगें? हाँ, यदि तुम राक्षसगृह में जाकर जीवित वापिस लौट आओगे, तो सब तुम्हें पुण्यात्मा समझकर तुम्हारा विश्वास करे लेगे। ऊंचे कुलवाला जानकर हम भी सहर्ष अपनी बहनों का तुम्हारे साथ विवाह करा देंगे। धन्यकुमार ने कहा– ठीक है, कल हम भी अपने पुण्य की परीक्षा करेंगे। हम राक्षसगृह जायेंगे। आज वह धन्यकुमार नामक युवक राक्षसगृह जायेगा, राक्षसगृह के पास लोगों की भीड़ जमा हो चुकी है। लोग सोच रहे हैं कि आज तक उस राक्षसगृह में गया हुआ व्यक्ति जीवित नहीं लौटा है। यह परदेसी मरने के लिए क्यों तैयार हो गया है? राजा भी कैसा निर्दयी है जो अपने पुत्रों को ऐसा करने से नहीं रोक रहा है? तरह–तरह की बातें करने वाले लोग दुःखी हो रहे हैं।

आप अपने भाइयों को ऐसे करने से रोककर अपने भाग्य की रक्षा कर सकती हैं। जल्दी से उसे मरने से बचाइए, नहीं तो उसकी हिंसा का फल आपको भी लगेगा। यह कहकर पुष्पवती रोने लगी।

राजकुमारियों ने कहा– अरी पगली, क्यों रो रही हो? वह पुण्यात्मा है, जिसने कौड़ी से करोडों कमाए हों, जिसके आने पर व्यापार तेजी से उछला हो, जिसके आने पर सूखे कुएँ

में पानी आ जाए वह पुण्यात्मा वास्तव में पुण्य का पिण्ड है, उसे मारने की राक्षसगृह में शक्ति नहीं है। चिन्ता मत कर उसे जीवित ही देखोगी। हमारा भी विश्वास कर। अब हमें भी विश्वास हो गया है कि वह जीवित आकर हमारा निश्चित रूप से वरण करेगा। उसे हम मन से अपना पति मान चुकी हैं। हमें उसकी चिन्ता जरा भी सता नहीं रही है, क्योंकि वह धन्यकुमार नहीं, बल्कि पुण्यकुमार है। , तू भी पुण्य का प्रभाव देख। रो मत। उनके समझाने पर पुष्पवती शान्त हो गई। उसे भी विश्वास हो गया कि –

शुद्धस्य हि न शंकाऽस्ति साध्यं साधयतो ध्रुवम् ।

अर्थः– शुद्ध अन्तर्मनवाले मनुष्य को कार्य सिद्ध करते हुए शंका नहीं होती है।

राक्षसगृह के सामने लोगों की भीड़ जमा थी। लोगों के मना करने पर भी धन्यकुमार राक्षसगृह में गया । धन्यकुमार राक्षसगृह में ज्यों ही पहुँचा, त्यों ही वहाँ रहने वाले भूतों (भूत जाति के देवों) ने उसका स्वागत किया। सम्मान किया। उच्चासन पर विराजमान कर उसका अभिषेक किया। उसे प्रणाम कर कहा–

हे महापुरूष धन्यकुमार आज का दिन धन्य है, सचमुच में आपका पुण्यप्रताप धन्य है। हम आपके सेवक हैं। हमें आज्ञा दीजिए हम आपकी सेवा करेंगे। आदेश मानेंगे। हम आपको स्वामी मानते हैं। आप ही हमारे स्वामी हैं।

धन्यकुमार यदि दुष्ट चित्तवाला होता तो उन भूतों को आदेश देकर राजकुमारों को बन्दी बनवा सकता था, पर उसने उन देवों को ही समझाया कि–

हे देवों! ऐसा मत कहिए, आप गौरवशाली, तीन ज्ञान के धारी, अनेक ऋद्धिसम्पन्न, जिनभक्त, पूज्य, उत्तम गति के

धारक देव हैं, मैं साधारण मनुष्य हूँ। आप मुझे इतना सम्मान मत दीजिए।

मनुष्यों में प्रायः मानकषाय की अधिकता रहती है। मानकषाय है भी विचित्र। जितना मान–सम्मान मिलता है, उतनी उसे पाने की इच्छा और बढ़ती जाती है। इसलिए आप इतना सम्मान भी मत दीजिए कि मेरी मानकषाय बढ़े।

देवों ने कहा–

हे भाग्यवान् धन्यकुमार! देवगति से मनुष्यगति उत्तम है, क्योंकि संयम की प्राप्ति देवगति में नहीं है। देव एक उपवास भी नहीं कर सकते। मनुष्य ही पूर्णसंयम धारण करके मोक्ष जा सकते हैं। इसलिए हमारी दृष्टि में मनुष्य ही देवों से उत्तम हैं। यह बात अलग है कि सामान्यतया जीवों में भोगों की वासना ज्यादा होती है, त्याग की भावना कम होती है।

देवों ने धन्यकुमार पर पुष्पवृष्टि की, मधुरता से दुन्दुभि बाजा बजाया, दिव्य कपड़े पहिनाये, मस्तक पर मुकुट बांधा, गले में दिव्य हार, भुजाओं में बाजूबन्द, कानों में कुण्डल, हाथों में कंकण, उँगली में दिव्य अँगूठी, कमर मे रत्नजड़ित कमरबन्ध, पहिनाकर धन्यकुमार का पुनः सम्मान कर उसे धन से भरा खजाना देकर कहा–

हे स्वामी! इस खजाने को स्वीकार कर हमें भार से मुक्त कीजिए। हम देवगण इन्द्र की आज्ञा से खजाने की रक्षा के लिए नियुक्त किये गये थे। उनकी आज्ञा के अनुसार आप इस खजाने के स्वामी हो, आप को सौंपने तक हमें यहाँ रहने के लिए कहा था, सो आज से इस खजाने के स्वामी आप हैं, हम हमारे निवास की ओर जा रहे हैं। जब देव चले गए, तब धन्यकुमार आभूषणों से सुसज्जित होकर खजाना लेकर

राक्षसगृह से बाहर आया, तब तक राजा श्रेणिक भी राक्षसगृह तक आ चुके थे।

राजा ने खजाने के साथ सुसज्जित धन्यकुमार को जीवित देखकर सोचा –

यह कोई साधारण मनुष्य नहीं दिखता। यह जीवित आया है। यह पुण्यात्मा है। मैंने सुना था कोई परदेसी है। यह तो स्वर्ग का कोई दिव्य पुरूष लगता है। ऐसा मन में सोचकर राजा ने लोगों से कहा –

हे मनुष्य देखो, यह पुण्य का पिण्ड परदेसी युवक। स्वर्ग से अवतीर्ण हुए इस महापुरूष के प्रभाव का तो चितंन भी नहीं किया जा सकता। तप के बिना पृथ्वी पर ऐसा प्रभाव नहीं हो सकता। अवश्य इसने पूर्व में तप किया है, क्योंकि–

तपसा साध्यतेऽसाध्यं तत्तपः सुकरं न हि।

अर्थः– तप से असाध्य काम भी सिद्ध हो जाते हैं, परन्तु वह तप सरल नहीं है।

हे लोगों, मैंने सुना था, मेरे पुत्रों ने अपनी बहनें हारी हैं। मेरे विचार में इसने पुण्य से उन कन्याओं को जीता है। उनका उद्धार किया है।

देखो, आपके सामने यह जीवित आया है। राक्षसगृह के देवताओं ने इसकी पूजा की है। इसका अर्थ है –

न मनुष्यो न देवोऽस्ति पुण्यवान् पूज्यते यतः।

अर्थः–न मनुष्य, न ही देव पूजा जाता है, बल्कि पुण्यवान पूजा जाता हे।

परन्तु पूजनीय मनुष्य कभी भी अभिमान नहीं करता है। क्योंकि यह जानता है कि वह पृथ्वी वसुन्धरा कहलाती है, इसपर एक से बढ़कर एक पुण्यात्मा विराजमान हैं। वही कहा है–

मदो न क्रियते तेन बहुरत्ना वसुन्धरा ।

अर्थः– इस वसुन्धरा पर एक से बढ़कर एक उत्तम पुरूष विद्यमान हैं, अहंकार किसका करें?

हे लोगों –

धर्म्मो मङ्गलमुत्कृष्टं सोऽहिन्सा संयमस्तपः ।
देवास्तस्मै नमस्यन्ति यस्य धर्म्मे सदा मनः ।।

अर्थः– धर्म उत्कृष्ट मङ्गल है, वह धर्म अहिंसा, संयम, तप है।, जिसका मन सदा धर्म में रहता है। उसे देव भी नमस्कार करते हैं।

इसके बाद राजा ने धन्यकुमार को सोलह कन्याएं ब्याह दीं और धन धान्य से भरे हुए सोलह महल भेंट किए।

भद्रा, पुष्पवती, धनश्री, कमला, गुणवती, धनवती आदि के साथ धन्यकुमार प्रेम से रह रहा था। प्रतिदिन देवदर्शन, पूजन, दान, स्वाध्याय आदि उसके जीवन के नित्य कार्य थे। एक दिन धन्यकुमार को एक पुरूष तेज कदमों से आता हुआ दिखाई दिया। वह पुरूष फटे पुराने कपड़ों को पहने बड़ा दुःखी दिखाई दे रहा था। पैदल चलने से थका हुआ दिख रहा था।

वह मनुष्य धन्यकुमार को राजा या अमीर राज पुरूष जानकर उसके पैरों को छूने को झुका था। परन्तु धन्यकुमार तुरन्त पीछे हट गया। क्योंकि वह पुरूष कोई और नहीं बल्कि उसके पिताजी ही थे। उसने कहा–

पिताजी, आप यह क्या कर रहे हैं? मैं आपका पुत्र हूँ। मुझे आपके पैर छूने चाहिए। यह मेरा अधिकार है, कर्तव्य भी। यह हमारी संस्कृति भी है। मैं अपके पैर छूता हूँ। मुझे आशीर्वाद दीजिए।

यह कहकर धन्यकुमार उस पुरूष के पैर छूने झुका, त्यों ही वह पुरूष पीछे हट गया और कहने लगा–

भाग्य ने तो हमारे साथ मजाक किया ही है, आप भी मजाक कर रहे हैं। कीजिए, क्योंकि गरीबी मजाक के लिए ही होती है।

धन्यकुमार ने कहा– पिताजी, मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ, बल्कि आप सचमुच में मेरे पूज्य, सम्माननीय पिताजी सेठ श्रीदत्त हैं। मैं आपका सबसे छोटा पुत्र धन्यकुमार हूँ। अनेक वर्षों के विरह के कारण और मेरी वेशभूषा के कारण पहिचान नहीं रहे हैं। घर चलिए, मैं आपको विस्तार से बताता हूँ। यह कहकर धन्यकुमार ने पिताजी के पैर छुए। उनको आदर के साथ घर ले गया। रास्ते में धन्यकुमार के पिताजी श्रीदत्त ने कहा– बेटा, तुम्हें तुम्हारे भाइयों ने मारा था। तुम तो...

धन्यकुमार– पिताजी, मेरे पापकर्म के उदय से उन्होंने मुझे मारने की कोशिश की थी, पर मेरे पूर्व के पुण्य के कारण मैं बच गया। और पूर्व के पुण्य के उदय से ही मैं यहाँ राज्य का स्वामी और अनेक कन्याओं का पति हूँ। हे पिताजी,

पुण्यं फलति सर्वत्र ।

अर्थः–सब जगह पुण्य ही फलता है।

श्रीदत्त घर जाकर धन्यकुमार के गले लगकर रोने लगे। धन्यकुमार ने पूछा– आप कैसे हैं? मेरी माँ कैसी हैं? कैसे हैं मेरे भाई? आप यहाँ कैसे आये हैं?

तब श्रीदत्त ने बताया– बेटा, कुछ मत पूछो, सबके बुरे हाल हैं। तुम्हारे घर से जाते ही, घर की लक्ष्मी भी जाती रही। घर का सुख जाता रहा। तुम्हारे विरह से तुम्हारी माँ का बुरा हाल है। वह रोज तुम्हें याद कर करके रोती है। घर में खाने के लिए दाने नहीं हैं, पहिनने के लिए ढंग के कपड़े नहीं हैं।

तुम्हारे जाते ही यक्षों ने सब धन छीन लिया और दरिद्रता को प्राप्त कराया।

तुम्हारे भाई अपने कर्मों को कोस रहे हैं। कह रहे हैं, वह था, तब उससे द्वेष करते थे, उसकी आत्मा को पहिचान नहीं पाये। उसके पुण्य को पहिचान नहीं पाये। बेटा, सभी जीव अपने–अपने कर्मों का फल पाते हैं, पा रहे हैं।

मैं तुम्हारी माँ की दशा देखकर तुम्हें लगातार ढूँढ रहा हूँ, हर जगह निराशा हाथ लगी, पुण्य के उदय से आज तुम मिले हो। मुझे किसी ने बताया था कि राजगृही में कोई विशेष पुण्यात्मा युवक है। मैंने सोचा राजगृही तीर्थ की यात्रा ही कर लूँ , सो यहाँ आया था। यह भी सोचा था कि हो सकता है, वह युवक धन्यकुमार हो। सो बेटा मेरा सोचा सही हुआ। वह अद्‌भुत पुण्यात्मा युवक तुम ही निकले। यहाँ मेरी बहन और तुम्हारी बुआ रहती है। उसके सुभद्रा नाम की बेटी है और शालिभद्र नाम का बेटा है।

बेटा, तू सुख से रह। मैं यह समाचार लेकर जाता हूँ और तुम्हारी माँ को सुनाता हूँ।

यह कहकर सेठ श्रीदत्त जाने लगा, तब धन्यकुमार ने पिताजी को उच्च आसन देकर ऊपर बिठाया। उनके पैर दबाने लगा और कहा– पिताजी, अब आप यहीं रहिए। मैं सेवकों को भेजकर माँ को, भाइयों को यहीं पर शीघ्र ही बुलवाता हूँ।

धन्यकुमार ने सेवकों को बुलाकर अच्छे तेजगति वाले वाहनों के साथ उज्जयिनी भेजते हुए कहा– माँ और भाइयों को हमारी कुशलता के समाचार देकर आदर के साथ शीघ्र ही यहाँ ले आइए। सेवक उज्जयिनी गए।

कुछ सेवकों को राजगृही में बुआ के घर भेजकर बुआ, फूफा, शालिभद्र, सुभद्रा को बुलवाया।

सभी 31 (इक्कतीस) पत्नियों को बुलवाया। धन्यकुमार की सभी पत्नियाँ आयीं। सभी एक से बढ़कर एक सुन्दर थीं। गहनों से लदी थीं। सबने अपने ससुर व पति के पैर छुए। लक्ष्मी के सौन्दर्य को धारण करने वाली बहुओं को देखकर धन्यकुमार की नम्रता देखकर और उसके पुण्य का विचार कर श्रीदत्त को असीम आनन्द की अनुभूति हुई। हो भी क्यों नहीं? ऐसा कौन–सा पिता है इस विश्व में, जिसे पुत्र की उन्नति से खुशी नहीं होती हो? संसार के सभी पिताओं को पुत्र के गुणों से, वैभव से, सम्पत्ति से प्रसन्नता होती ही है।

श्रीदत्त ने बहुओं को आशीर्वाद देकर कहा– बेटियों, तुम्हें देखकर लगता है कि वास्तव में पुण्य से पुण्य मिला है, पुण्य से पुण्य होता है। जुग जुग जिओ, बेटियों और ऐसा ही पुण्य भोगती रहो।

इतने में शालिभद्र बहन सुभद्रा और माता–पिता के साथ वहाँ आया। श्रीदत्त ने धन्यकुमार का परिचय कराया।

दूसरे दिन उज्जयिनी गए हुए सेवकों ने उज्जयिनी जाकर कहा–

धन्यकुमार, जो हमारे स्वामी हैं, उन्होंने आप सबसे क्षमा मांगी है और कहा है कि माता, सब भाई मुझे क्षमा करें और उनका निवेदन सुनकर कृपा कर जल्दी आइए।

धन्यकुमार के जीवित होने की बात सुनकर सब खुश हुए। खुशी खुशी से वाहनों में बैठकर राजगृही पहुँचे। धन्यकुमार ने राजगृही से दो कोस आगे जाकर उनकी अगवानी की।

धन्यकुमार माँ देवश्री के पैर छूकर गले लगकर खूब रोया। देवश्री भी खूब रोई। पर अबकी बार के रोने में खुशी के आँसू थे। धन्यकुमार ने भाइयों के पैर छूकर माफी मांगी। सब

राजमहल में आये, तब बहुओं ने आकर देवश्री और जेठों के पैर छुए। सारा वातावरण आनन्दमय बन गया था।

शालिभद्र ने बहन सुभद्रा का धन्यकुमार से धूमधाम से विवाह कराया। सुभद्रा धन्यकुमार की सबसे प्रिय पत्नी बनी। वे सब राजगृही नगरी में आनन्द से रहने लगे। धन्यकुमार अपने भाइयों को सदा धर्म और तत्त्व का उपदेश देता था कि–

हे भाइयों! मेरा आपके प्रति किसी भी तरह का बैरभाव नहीं है। क्योंकि मुझे तारणहार गुरूदेव श्री मुनिसुव्रत जी का पुण्ययोग से संयोग हुआ था, उनसे पूछा था, तब उन्होंने अपने दिव्य अवधिज्ञान से जानकर बताया था कि हम सब पूर्व के दो भवों से साथ–साथ हैं। मैं अज्ञान के कारण आप लोगों के प्रति द्वेषभाव रखता था, उससे जो कर्म बंधे, उनके उदय से इस भव में ऐसा संयोग बना कि आप लोगो को मेरे प्रति द्वेषभाव हो रहे थे। जीव जैसा बोता है, वैसा ही काटता है। इसलिए कभी किसी से द्वेषभाव नहीं रखना चाहिए, भले ही उसकी गलती दिखे, वरना यह परम्परा कभी भी नहीं टूट पायेगी।

सभी जीवों को संसार के सभी जीवों के प्रति मैत्रीभाव रखना चाहिए। कहा भी है–

" मैत्रीभाव जगत् में मेरा सब जीवों से नित्य रहे।"

सबको जीवों के प्रति उपकारभाव रखना चाहिए। आचार्य मुनिसुव्रतजी ने यही सीख दी है–

परस्परोपग्रहो जीवानाम्।

अर्थः–जीवों को परस्पर एक दूसरे का उपकार करना चाहिए।

आप लोग तत्त्व का अभ्यास कीजिए तत्त्व में मन लगाइए। स्वाध्याय आदि को जीवन का अंग बनाइए। क्योंकि नजर कितनी ही अच्छी हो, अन्धेरे में देख नहीं पाती। वैसे ही

क्षयोपशम (ज्ञान) कितना ही हो, परन्तु शास्त्रज्ञान, आत्मज्ञान बिन मोक्ष का मार्ग नहीं सूझता। अतः प्रत्येक गृहस्थ को प्रतिदिन स्वाध्याय, आत्मचिंतन अवश्य करना ही चाहिए।

धर्म ही जीवन का सार है। धर्ममय आचरण में ही जीवन की सार्थकता है। व्रत, नियम जीवन के श्रृंगार हैं। इन्हीं से जीवन सजाकर सफल करना चाहिए। भाइयों, मेरा तो यही कहना है और मानना भी है।

इस तरह भाइयों को सदा तत्त्वज्ञान की प्रेरणा देता हुआ धन्यकुमार सबका प्रिय बन गया था। उस देश में उसका कोई अपरिचित न था। उसकी कीर्ति दूर दूर तक फैल चुकी थी।

वह स्वयं निरन्तर जिनागम का अध्ययन व आत्मचिंतन करता रहता था। वह मानता था कि–

जिनागमजानानाः किं न कुर्वन्ति देहिनः।
पापं स्वघातकं तेन पठितव्यो जिनागमः।।

अर्थः–जिनागम को नहीं जाननेवाले प्राणी अपना घात करनेवाले होते हैं, वे किस पाप को नहीं करते? अर्थात् सभी पाप करते हैं। इसलिए (अर्थात् हमसे पाप न हो इसलिए) जिनागम को सदा पढ़ते रहना चाहिए।

जिनागमं न जानन्ति तेऽन्धा अपि सचक्षुषः।
ये पुनरवबुध्यन्ते ते भवेयुस्त्रिलोचनाः ।।

अर्थः–जो जिनागम को नहीं जानते हैं, वे चक्षु सहित होने पर भी अन्धे हैं और जो जिनागम को जानते हैं, वे त्रिलोचन अर्थात् तीन नेत्र के धारक होते हैं।

स्वयं यत्कुरूते जीवा स्वयं तत्फलमश्नुते।

अर्थः– जीव जो स्वयं करता है, उसका फल स्वयं भोगता है।

धन्यकुमार ने सात भाइयों को सात महल एवं सात करोड़ मुद्रा धन दिया। माता–पिता को अपने पास महल में ही रखा। पुत्र के कर्तव्य निभाता हुआ पिता–माता से कहता था कि मैं आपका सेवक हूँ। मेरे लिए आज्ञा दीजिए। मैं वही करूँगा, जो आप चाहते हैं। आप लोग अपना ध्यान जिनेन्द्र भगवान की भक्ति, पूजन, धर्म में लगाइए। धर्म का साधन करते रहिए। धर्म ही भला है।

धन्यकुमार ने अनेक जिनमंदिर बनवाये। त्यागियों की सेवा को परम कर्तव्य मानकर उनकी सेवा में चित्त लगाये रखा। गृहस्थों के योग्य संयम का दृढ़ता से पालन किया। दाता के सात गुणों से युक्त होता हुआ दान देता था। अज्ञान का नाश करनेवाले, आत्मज्ञान प्राप्त करानेवाले शास्त्रों के अर्थ का निरन्तर चिंतन करता।

इस प्रकार धन्यकुमार का जीवन सुख, आनन्द, शांति के साथ बीत रहा था।

शालिभद्र भी घर में सुख से रह रहा था। वह धन्यकुमार का प्रिय साला था। सुभद्रा धन्यकुमार की प्रिय पत्नी थी। शालिभद्र सुभद्रा का भाई था। शालिभद्र धर्मात्मा था। संसार से सदा उदास रहता था।

एक दिन शालिभद्र दर्पण में जब मुँह देख रहा था, तब उसे अपने सिर में एक सफेद बाल दिखा। सफेद बाल को देखते ही उसने विचार किया– अहो, रूप एवं सौन्दर्य को नष्ट करने वाला बुढ़ापा आ गया है। यह बाल सिर्फ एक सफेद बाल नहीं, बल्कि यम का दूत है। जो यह कह रहा है कि जीवन के कुछ ही दिन शेष हैं। अब तक कुछ आत्महित नहीं कर पाये हो तो अब कर लो। मनुष्य भव का अन्त आ रहा है। अन्त भला सो सब भला। मैंने सारा जीवन विषयभोगों में

गँवाया। मुझे दुःख के अलावा क्या मिला? अब भी मोक्ष की, आत्मकल्याण की नहीं सोचूँ? तो कब सोचूँगा। अरे, पल–पल करते जीवन हाथ से कब निकल जाता है, पता ही नहीं चलता? अब प्रमाद में या मात्र सोचने में समय नहीं गँवाना चाहिए। आत्मकल्याण करना चाहिए।

आत्मकल्याण भोगों में नहीं है, भोगों के त्याग में है। भोगों के त्याग में ही सौभाग्य है। कहा भी है–

न हि भोगो भाग्यम्, भाग्यं भोगेषु वैराग्यम्।

अर्थः– भोगों के मिलने में भाग्य नहीं है, भाग्य तो भोगों से वैराग्य में है।

शरीर में आई हुई वृद्धावस्था तिरस्कार कराने वाली, निन्दनीय तथा दुर्भाग्य बढ़ाने वाली है। सही कहा है–

अहो जरा समायाता रूपलावण्यनाशिनी।
अवज्ञाभाजनं निन्द्या दुर्भगत्करी च या।।

अर्थः– शरीर में आनेवाली वृद्धावस्था रूप एवं सौन्दर्य का नाश करनेवाली, अनादर कराने वाली, निन्दा करने योग्य एवं दुर्भाग्य की जननी है।

जब तक आँखों की रोशनी नहीं जाये, कान सुनना बन्द न करें, शरीर में शक्ति है, तब तक परम तप करता हूँ। इस शरीर से संयम पालन करता हूँ।

ऐसा विचार कर शालिभद्र ने नगरवासियों से क्षमा–याचना कर, परिवार जनों से अनुमति लेकर, घर का भार पुत्र मनोभद्र को सौंपकर दीक्षा लेने का निश्चय किया। धन्यकुमार के प्रति विशेष प्रेम होने से तथा धन्यकुमार को उपकारी धर्मात्मा जानकर एक सेवक धन्यकुमार के पास भेजकर कहलवाया कि–

हे मित्र! मैं (शालिभद्र) दीक्षा ले रहा हूँ शीघ्र आकर मुझ से मिलो। देर न करो। **शुभस्य शीघ्रम्** (शुभ कार्य बिना देर किये कर लेना चाहिए) कहावत के अनुसार मैं शीघ्र ही दीक्षा ले रहा हूँ। आप जैसे धर्मात्मा के प्रति विशेष राग होने से आपसे एक बार मिलना चाहता हूँ। जल्दी आकर मुझसे मिल जाइए। जिस समय सेवक आया था। उस समय सुभद्रा धन्यकुमार को नहला रही थी। स्नान आदि कर धन्यकुमार तैयार होकर शीघ्र ही शालिभद्र के पास आया। आकर उसने कहा– हे मित्र! कैसे हो?

शालिभद्र– मित्र मैंने दीक्षा लेने का विचार किया है।

धन्यकुमार–मित्र तुम सौभाग्यशाली हो, जो तूम्हें ऐसा विचार आया है।

शालिभद्र– परन्तु संयम का मार्ग बड़ा कठिन है।

धन्यकुमार– रोगियों के लिए, भोगियोंके लिए संयम का मार्ग (जीवन) कठिन है, परन्तु वैराग्य को प्राप्त मनुष्यों के लिए कठिन नहीं है।

शालिभद्र– घर में तप नहीं किया। तप का अभ्यास मात्र किया।

धन्यकुमार– घर में रागसहित होने से तप नहीं होता। तप का अभ्यास करने से विशेष लाभ नहीं होता। तप, तप करने से ही होता है।

सरोगेणौषधं पथ्यं न भोक्तव्यं भवेद्यथा।।

विवेकिना तथा बोधिर्मोक्तव्या न सुखैषिणा।

बोध्या विना न लभ्येत मोक्षसौख्यं निरव्ययम्।।

अर्थः– जैसे बीमार व्यक्ति को हितकारी दवाई कभी नहीं छोड़नी चाहिए। वैसे सुख चाहने वाले विवेकी चतुर नर को

वैराग्यभावना कभी नहीं छोड़नी चाहिए। क्योंकि वैराग्यभावना बिना निर्दोष मोक्षसुख की प्राप्ति नहीं होती है।

इसलिए हे मित्र, इस आत्महितकारी वैराग्यभावना को मत छोड़ो।

पहले भी वृषभ आदि महापुरूषों ने वैराग्यभावना के द्वारा तप को प्राप्त कर मोक्ष पाया है। क्या उन्होंने घर में अभ्यास किया था?

बादल आदि की आकृति के विनाश आदि थोड़ा सा भी वैराग्य का कारण पाकर असंख्य वर्षों तक भोगे हुए भोगों को तथा अतुल्य अथाह वैभव को सड़े हुए तिनके के समान छोड़कर निडर हो तप करके मोक्षपद पाया है।

तुम तो डरपोक जान पड़ते हो। जो सिर्फ सोच ही रहे हो।

इसी बीच वहाँ आयी हुई सुभद्रा बोल पड़ी–

जो स्वयं करने के लिए समर्थ नहीं है, वह दूसरों को उपदेश कैसे दे सकता है?

धन्यकुमार– हे सुभद्रे, सच कह रही हो। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मुझे स्नान कराने के लिए तुम्हारी आवश्यकता नहीं होगी। तमने मुझे मोहनींद से जगाया है, तुम मेरी परम उपकारिणी हो। मेरा कहा माफ कर दो।

मुझे जिनदीक्षा लेकर हितकारी मार्ग में लग जाना चाहिए। क्योंकि मुझे जरा (बुढ़ापा) रूपी राक्षसी का शरीर पर अधिकार नहीं हो, उससे पहले मोक्षसुख की उपाय–स्वरूपा दीक्षा लेकर तप की साधना करनी चाहिए। नहीं तो जरा के आने पर व्रत, तप कोसों दूर रहेंगे। समय रहते दीक्षा ले लेना चाहिए, नहीं तो काल सर्वभक्षी है। वह गर्भ में रहनेवाले, जवान, दीन, दुःखी, धनी, निर्धन आदि सभी को बिना परवाह किए

अपना शिकार बना लेता है। जब तक इन्द्रियाँ अपना काम कर रही हैं, तब तक आत्महित का उपाय संयम ग्रहण कर लेना चाहिए। उनके काम बन्द कर देने पर तो संयम सध ही नहीं सकता।

जीवन क्षणभंगुर है, लक्ष्मी चपल है, संसार स्वार्थ से भरा है। दुःख से कमाये जानेवाला धन दुःख ही देता है। गृहवास धूल के समान तत्त्वज्ञान पर रागद्वेष की परत चढ़ाकर उसे मलिन कर देता है। वह पाप और आरंभ का कारण है। भोग असंतोष और पाप के ही कारण होते हैं। शरीर अपवित्र है, उससे तप जैसा पवित्र कार्य करवाना चाहिए।

इसलिए हे सुभद्रे, मै।तुम्हारे भाई से पूर्व दीक्षा लेता हूँ। उसके बाद शालीभद्र से कहा– मित्र देखो, मैं बिना पूर्व अभ्यास के दीक्षा लेता हूँ। चलो दीक्षा लेते हैं।

धन्यकुमार ने सबसे क्षमायाचना कर अपने पुत्र **धनभद्र** को राज्यसम्पदा देकर कहा–हे पुत्र! धर्मपूर्वक घर का भार सम्पादन करो। धर्म मत छोड़ना। उसके बाद उन दोनों धन्यकुमार और शीलभद्र ने वीर मुनि के पास जाकर कहा– हे दुःखहारक, पतित उद्धारक, धर्मदायक, धर्मसिन्धु, संसार छेदने वाली दीक्षा दीजिए। वीर मुनि ने निकट भव्य जानकर उन दोनों को दीक्षा दी।

धन्यकुमार को राजा आदि अनेक नगरजनों ने रोकने की कोशिशें कीं, परन्तु वैराग्य राग से नहीं रूकता। उसने उनसे यही कहा कि दीक्षा के साथ तप के बिना अनादिकाल का कर्मजंजाल नष्ट नहीं होता। आप सभी दीक्षा लीजिए। सच है रागी के लिए संयम, तप कठिन दिखते हैं तथा त्यागी के लिए राग के कार्य कठिन लगते हैं। मैं अनादिकालीन कर्मसंतति को मिटाने के लिए तप का मार्ग अपना रहा हूँ ,

जिससे जीव को संसार से मुक्ति मिलेगी। आप सब भी इस मार्ग को अपना कर आत्महित कर लीजिए। धन्यकुमार के इस तरह के सम्बोधन से अनेक मनुष्यों को वैराग्य प्राप्त हो गया। उन्होंने व्रत नियम लिए, कई दीक्षा का मन बनाकर उनके साथ चल दिये।

धन्यकुमार की पत्नियों ने गृहस्थी में संभव व्रत, नियम लिए तथा इसी प्रकार माता, पिता, भाईयों ने भी व्रत, संयम का मार्ग अपनाया।

उन सभी ने अविरल, अखण्डपने वैराग्यभावना धारण की। तथा

धनपतिमुनिनाथोऽनित्यमावेद्य सर्व्वं,
धनतनुसुभगत्वं जीवितं स्नेहबन्धनम्।
विषयसुखमसारं सारमेकत्वतत्त्वं,
जिनशरणमगादाराधमानस्तदेकम्।।

अर्थः– धन, शरीर, सौन्दर्य, जीवन, स्नेह के बन्धन सब कुछ अनित्य हैं, विषयों का सुख असार है, (निज चैतन्य भगवान आत्मा रूप) एकत्व तत्त्व ही सार है– ऐसा विचार कर वे धन्यकुमार (आदि) एकत्व–विभक्त आत्मा का ध्यान करते हुए जिनेन्द्र भगवान के मार्ग की शरण को प्राप्त हुए।

वे मुनि पापकर्म का समूल नाश करने के लिए अपनी शक्ति जगाकर बारह प्रकार का तप करते थे। आलस्य छोड़कर शास्त्रों का अध्ययन करते थे। कभी पर्वतों की गुफाओं में, कभी सूने भवनों में, कभी खण्डहरों में, कभी श्मशानों में, कभी निर्जन एकान्त स्थानों में अपने ध्यान, अध्ययन की सिद्धि शेर की तरह निडर होकर अनेक आसनों के द्वारा करते थे।

अटवी आदि घने जंगलों में चलते थे, जहाँ सूर्य अस्त हो जाता था, वहीं रहते थे, ध्यान करने लग जाते थे। जीवदया पालते थे। जीवदया मुनियों का बाह्य प्रधान कर्तव्य होता है।

धर्मध्यान धारण करते हुए वे धन्यकुमार आदि महामुनि विहार करते हुए श्रावस्ती नगरी पहुँचे। वहाँ कुछ दिन ठहरे। आत्मध्यान में सदा लीन रहने वाले उन मुनियों को अपनी आयु की समाप्ति का आभास हो गया था। इसलिए उन्होंने आहार का त्याग कर, क्षमादि को धारण कर, निश्चल खड़े होकर कायसल्लेखना स्वीकार की।

अन्त में उन्होंने सालम्ब ध्यान छोड़कर निरालम्ब ध्यान करना प्रारम्भ कर दिया। मुनि धन्यकुमार ने शुभ ध्यान, शुभ योग और शुभ लेश्याओं के द्वारा नौ महिने तक सल्लेखना का पालन किया। अन्त में प्रायोपगमन मरण के द्वारा ध्यान और समाधि पूर्वक प्राण छोड़कर तप और धर्म के प्रभाव से देवायु का बंध करके सर्वार्थसिद्धि के विमान में अहमिन्द्र पद प्राप्त किया। तथा शालिभद्र आदि मुनि सल्लेखना के द्वारा समाधिमरण करके सौधर्म स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक के विमानों में उत्पन्न हुए।

वह देव धार्मिक कथा तथा धर्म की चर्चा करते हुए अपनी तैंतीस सागर की आयु पूरी करेगा। तैंतीस हजार वर्ष बाद उसके कण्ठ से अपने–आप अमृत झरता है, यही उसका आहार है। साढ़े सोलह वर्ष बाद एक श्वासोच्छ्वास लेता है।

तैंतीस सागर की देवायु पूरी करके राजकुल में जन्म लेकर मुनि बनकर तप के द्वारा कर्म की निर्जरा करके मोक्ष जायेगा। शीघ्र ही सिद्ध पद प्राप्त करेगा।

शिक्षा– देखो, एक निर्धन, दुःखी अकृतपुण्य केवल दान की भावना से स्वर्ग गया। उसके बाद जगह–जगह धन

प्राप्त करता रहा। धन्यकुमार मुनि बनकर तपश्चरण करके सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र देव बना। वहाँ से आकर राजकुल में जन्म लेकर मुनि बनकर मोक्ष जायेगा।

केवल दान की भावना का इतना फल है, तो स्वयं दान करने पर कितना सातिशय पुण्य बन्धेगा। इसलिए दानी बनो, दानवीर बनो। आत्मध्यानी बनो। आत्मसाधना करो। सुख और सिद्ध पद की प्राप्ति अवश्य होगी।

महापुरूष यशोधर

पुण्यधरा मध्यलोक के जम्बूद्वीप क्षेत्र के भरतखण्ड में योधेय नाम का देश था। इस देश में जिनेन्द्र भगवान के चैत्यालय ही जिसके आभूषण थे , ऐसा राजपुर नाम का एक नगर था। इस नगर का राजा मारिदत्त था। यद्यपि यह राजा चतुर, बुद्धिमान, न्यायवत्सल था, परन्तु अच्छी नीतिमत्ता, चतुराई, बुद्धि भी सम्यग्ज्ञान के बिना, सच्चे देवगुरू धर्म के बिना सच्चे सुख या मोक्ष का कारण नहीं बनते। इसलिए लौकिक सफलता के साथ अलौकिक दिव्य–ज्ञान भी होना चाहिए।

जैसे **लौकिक चतुराई बिना आत्मज्ञान के कषाय का ही कारण होती है।** वैसे वह राजा मारिदत्त हिंसा का प्रेमी होने से उसका पुण्य व्यर्थ था । क्योंकि **संस्कारों के बिना पुण्य विषयभोगों का साधन होता है।**

राजा मारिदत्त लौकिक सिद्धियों की ओर आकर्षित रहता था। उसे लगता था, मैं सिद्धियों के बल पर संसार का सबसे बड़ा राजा बनूँ।

एक बार राजपुर नगर के पास भैरव नाम का पाखण्डी संन्यासी आया था। वह दंभी था। उसने लोगों को भ्रम में ड़ालनेवाला भेष धारण किया था। उसने छोटे–छोटे मायावी चमत्कारों से लोगों को अपना भक्त बना लिया था। लोगों में पूर्वपुण्य के कारण बड़ी प्रसिद्धि पायी थी। इसलिए परीक्षक पुरूषों के अलावा सभी उसके गुणगान करते थे । वह अपनी प्रशंसा करता हुआ कहता था कि–

भेष धारण करना आसान होता है। पर भेष के अनुकूल आचरण करना बड़ा ही कठिन होता है। ज्ञान आसान है, पुण्य के उदय में आसानी से होता है। परन्तु

पुण्य का मोह छोड़कर आचरण करना, आत्मा का ध्यान करना, तप करना कठिन है।

मै अनेक युगों से जीवित हूँ, अमर हूँ। मैंने देवों और राक्षसों का समुद्रमंथन, राम–रावण का युद्ध, कृष्ण द्वारा कंस का वध देखा है। मैं सर्वशक्तिमान हूँ। मैं सूर्य–चन्द्रमा की गति को रोक सकता हूँ। मंत्र–तंत्र–यंत्र मेरे आगे पानी भरते हैं। मैं अग्नि को ठंड़ा औंर बर्फ को गरम कर सकता हूँ। मेरे जैसा कोई नहीं है। राजा मारिदत्त तक भी उसकी कीर्ति पहुँची थी। कीर्ति मानव को कहीं से कहीं पहुंचा देती है। मारिदत्त राजा ने मंत्री से कहा–

मुझे भैरव जोगी से एकान्त में मिलने की व्यवस्था करो। कुसंस्कारों से पर विषयों की ओर आकर्षित होना आसान है। परन्तु पूर्व के कुसंस्कारों के कुचक्र को तोड़कर पर पदार्थों से मोह तोड़ना दुष्कर कार्य है।

जानते हुए भी मोह में फँसना तीव्र मोह परिणाम ही है। मंत्री "जो आज्ञा महाराज" कहकर भैरव जोगी को राजा के पास लाने के लिए चला गया।

मंत्री ने भैरव जोगी के पास जाकर नम्र शब्दों में निवेदन किया कि–

"महाराज आपके दर्शन कर राज्य में सुख–शान्ति चाहते हैं।"

भैरव जोगी मानो इसी इंतजार में बैठा था, उसने जवाब दिया– आपके महाराज की इच्छा हम अभी पूरी कर देते हैं।

भिखारी कौडी चाहता हो , उसे खजाना मिल जाये तो वह कितना खुश होगा ? वैसे ही भैरव जोगी खुद

चाहता था कि उसे राजा का सम्बल मिले , राजा की ओर निमंत्रण मिलने से खुश था।

शीघ्र ही भैरव जोगी और मंत्री राजा मारिदत्त के पास पहुँचे। मारिदत्त ने भैरव जोगी को दण्डवत प्रणाम किया। उसे उच्चासन देकर स्वयं उसके पादमूल में बैठ गया। **भैरव जोगी–** राजन् मन में जो भी इच्छा हो कहो, मैं सभी इच्छाएं पूर्ण करने में समर्थ हूँ। आपके पुण्ययोग से सर्वशक्तिमान ऐसा मैं आपके सामने विराजमान हूँ।

मारिदत्त– विवेकहीन था, साथ ही भैरव जोगी की प्रशंसा से वशीभूत था। **विवेकहीन नर लोभ में आकर किसी का दास बनने में देरी नहीं करता।** लोक–परलोक के विचार से रहित मनुष्य सिर्फ इस लोक की ही सोचता है। जीवन इससे पहले था, आज है, भविष्य में भी रहेगा। चतुर नर इस लोक का विरोध न करता हुआ, परलोक सुधारने का प्रयत्न करता है। परन्तु मारिदत्त आध्यात्मिक चतुराई से रहित इस लोक की सोचने वाला लोभी राजा था। उसने मन में सोचा–इनसे क्या माँगू।

कोई ऐसी चीज या विद्या माँगता हूँ, जो किसी के पास नहीं है। इससे सभी राजागण मेरे सामने नतमस्तक हो जायेंगे। तथा उन राजाओं को हराकर उनका राज्य तथा उनकी राजकन्याएं प्राप्त हो इसलिए दिव्य तलवार के साथ उसने आकाश में हवा पर चलने की शक्ति माँगी।

भैरव जोगी–बोला तथास्तु! तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा। परन्तु तुम्हें मेरे कहे अनुसार चलना होगा।

मारिदत्त– जो आज्ञा महाराज। जैसा आप कहेंगे, मैं वैसा ही करूँगा।

जैसे धन का इच्छुक पुरूष धन के लिए राजा को जानता है, उसकी श्रद्धा करता है, उसकी सेवा करता है। जैसे आत्मा का इच्छुक पुरूष आत्मा की प्राप्ति के लिए आत्मा को जानता है, उसकी श्रद्धा करता है, उसमें लीन रहता है। वैसे ही मारिदत्त राजा भैरव जोगी की सेवा करने लगा

भैरव जोगी– जो मैं कहूँगा तुम करोगे तो तुम्हें, वह सिद्धि प्राप्त होगी, तुम आकाश में उड़ने लगोगे तुम्हारे हाथ में अजेय तलवार होगी।

मारिदत्त ने जवाब में कहा– महाराज मैं वैसा ही करूँगा, जैसे आप कहेंगे। आप, मुझे आकाश में उड़ने की सिद्धि प्रदान करेंगे तो मैं जीवनभर आपका सेवक बनकर रोज आपके पैर धोऊँगा।

संसर्गेण गुणा अपि भवन्ति दोषाः।

कुसंग से अच्छे भले गुण भी दोष हो जाते है।

यद्यपि मारिदत्त भव्य था, पर कुसंगत व कुविचारों से झूठे लोभ में पड़कर विवेकहीन हो गया था। विष भला, विषधर भला पर कुसंगत भली नहीं है। क्योंकि विष, विषधर एक जन्म का नाश करते हैं पर कुसंगत जन्म जन्मान्तर में नाश करती है उसने यह नहीं सोचा कि अरे, जो स्वयं आकाश में नहीं उड़ सकता, वह दूसरों को कैसे उड़ा पायेगा? जो स्वयं वीतरागी नहीं होता वह दूसरों को वीतरागी कैसे कर पायेगा? जो आप स्वयं निर्लोभी नहीं है, दूसरों को निर्लोभी कैसे कर पायेगा? इसलिए वीतरागी बनने के लिए मात्र वीतरागी देव, शास्त्र, गुरू, के सेवन/भजन का विधान शास्त्रों में बताया गया है।

चंड़मारी देवी मारिदत्त की कुलदेवी थी। वह राजपुर नगर के दक्षिण भाग में निवास करती थी। वह राजा उस माँसाहारी देवी का परम भक्त था।भैरव जोगी ने चंड़मारी देवी के मंदिर के सामने बहुत बड़ा कुण्ड़ बनवाया। उसने मारिदत से कहा–

आकाशगामिनी विद्या को सिद्ध करने के लिए तुम्हें जलचर, नभचर अर्थात पशु–पक्षियो की तथा मनुष्य जीवों के एक–एक युगल की बलि देनी होगी।

आकाशगामिनी विद्या तथा दिव्य तलवार के लोभ में पड़े हुए राजा मारिदत्त ने बलि देने से कितने जीवों की हिंसा होगी? किन जीवों की बलि दी जायेगी, उन्होंने क्या अपराध किया? थोड़े से लोभ के लिए इतने सारे जीवों की मैं क्यों बलि दूँ? जीवन में किसी का उपकार नहीं किया तो उनका अपकार क्यों करूँ? विद्या मिल भी जायेगी तो जीवन तो क्षणभंगूर है, क्षणभंगूर जीवन के लिए ऐसा भयंकर पाप क्यों करूँ?– इन बातों का विचार किए बिना कह दिया "ठीक है गुरूदेव, जैसा आप कहेंगे, वैसा ही करूँगा।

इसके बाद राजा ने कोतवाल को बुलाकर कहा– धरती पर जितने भी जलचर, थलचर, नभचर जीव हैं लाने के लिए कोटपाल को आदेश दिया उन सभी जीवों के युगलों (एक–एक जोड़े) को लाने " जो आज्ञा महाराज" कहकर कोटपाल चला गया। कोटपाल ने सेवकों को जलचर, थलचर, नभचर जीवों को इकट्ठा करने का आदेश दिया । सेवकों ने धरती पर घूम–घूमकर समस्त जीव–युगलों को चण्ड़मारी देवी के प्रांगण में इकट्ठा कर कोटपाल को सूचना दी। कोटपाल ने राजा को, राजा ने

भैरवजोगी को सूचना देते हुए कहा–गुरूवर आपकी आज्ञा से समस्त जीव–युगलों को इकट्ठा कर दिया है।

भैरव जोगी राजा के साथ उन्हें देखने के लिए देवी के मन्दिर के प्रांगण में गया।

मारिदत्त– गुरूवर, आपकी आज्ञा से समस्त जीव–युगल उपस्थित हैं, यज्ञकार्य आरम्भ कर दीजिए।

भैरवजोगी– सभी जीव–युगलों को देवी के सम्मुख उपस्थित कर दीजिए।

उसके बाद उन निरपराध जीवों को देवी के सम्मुख उपस्थित कर हवन प्रारम्भ कर दिया।

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किं ?

अर्थ–जिसके पास स्वयं का ज्ञान नहीं हैं, उसके लिए शास्त्र किस काम के ?

अज्ञानी जन स्वयं व दूसरों के दुःख के ही कारण होते हैं। इसके विपरीत ज्ञानी जन स्वयं व दूसरों के सुख के ही कारण होते हैं। इसलिए आत्मा का सच्चा ज्ञान, श्रद्धान करके सर्वप्रथम स्वयं ज्ञानी बनने का प्रयत्न करना चाहिए ।

जो दूसरे जीवों को मारकर सुख की कामना करता है, वह स्वयं अन्य जन्म में उसके द्वारा मारा जाकर दुःख पाता है। इसका विचार किये बिना हवन कार्य प्रारंभ किया। जब जीवों के बलि देने की बारी आयी, तब भैरव जोगी ने सभी जीवों को पुनः देखा। उसे उन जीवों में मनुष्य का जोड़ा दिखाई नहीं दिया, तब भैरव जोगी ने राजा को कहा– हे राजन् इसमें मनुष्यों का जोड़ा तो है ही नहीं।

मारिदत्त राजा–गुरूवर अभी मँगवाता हूँ।

भैरव जोगी– राजन्! ध्यान रहें मनुष्यों का जोड़ा बत्तीस लक्षणों से युक्त सर्वाङ्ग सुन्दर होना चाहिए।

मारिदत्त राजा ने कोतवाल को, कोतवाल ने सेवकों को आदेश दिया कि बत्तीस लक्षणों से युक्त सर्वाड़्ग सुन्दर मनष्यों का जोड़ा तुरन्त उपस्थित करो।

"जो आज्ञा" कहकर सेवक मनुष्यों के जोड़े को ढूँढने के लिए निकल गए। वे सेवक चारों ओर सर्वत्र राजा के आदेश से बत्तीस लक्षणों से युक्त सर्वाङ्ग सुन्दर मनुष्य युगल को ढूँढने लगे।

राजपुर नगर से थोड़ी दूरी पर पार्थिवानन्द नाम का एक सघन वन था। उस वन में **सुदत नाम के आचार्य** अपने संघ सहित आये थे। उनका संघ विशाल था। वे उस वन के पास स्थित श्मशान में रूके हुये थे। उन्होंने सोचा इस वन में लोगों का आवागमन होता है। जहाँ लोगों का आवागमन होता है, वहाँ वीतरागी, उदासीन मुनियों को नहीं रहना चाहिए। क्योंकि लोगों के आवागमन में बाधा होती है तथा स्वयं के परिणाम भी बिगड़ने का भय रहता है। अतः उन्होंने श्मशान का आश्रय लिया ।

मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका का वह चतुर्विध संघ देव, इन्द्रों से पूज्य, जीवों की दया में तत्पर कठोर तपश्चरण करता हुआ, धर्म का पोषण तथा शरीर का शोषण करता हुआ धर्मध्यान में लीन रहता था।

जिस दिन संघ वहाँ आया था, उस दिन संघ के सभी मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविकाओं ने उपवास किया था। उसी दिन संघ में नवदीक्षित, कोमल अंगवाले, अभयरूचि व अभयमति नाम के सगे भाई–बहिन क्षुल्लक,

क्षुल्लिका थे। उन्होंने आचार्य सुदत्त से उपवास हेतु याचना की। परन्तु आचार्य ने कहा–

आप दोनों अभी–अभी दीक्षित हुए हो, तुम्हारे शरीर कोमल हैं, आप लोगों को तपचरण का विशेष अभ्यास नहीं है। **अभ्यास–विशेष के बिना, अपने सामर्थ्य, देश–काल–परिस्थितियों के ज्ञान के बिना उपवास आदि के नियम, मात्र मान आदि कषायों के पोषण के लिए नहीं लेने चाहिए। विषय–कषायों के साथ आहार के त्याग को उपवास कहते हैं। सामर्थ्य और अभ्यास के बिना व्रतादि लेने से मन में कषाय विद्यमान रहती है। उससे कर्मबन्ध होता है। कषाय के अभाव पूर्वक व्रत लेने से ही कर्म की निर्जरा होती है।** इसलिए आप दोनों आहार के लिए जाइए। धीरे–धीरे अभ्यास करके उपवास आदि कीजिए।

आचार्य की आज्ञा से अभयरूचि, क्षुल्लक, अभयमति, क्षुल्लिका आहार के लिए निकले। जिस रास्ते से वे जा रहे थे, उसी रास्ते से बत्तीस लक्षणेंवाले, सुंदर मनुष्य के जोड़े को बलि हेतु खोजनेवाले राजा के सेवक आ रहे थे। उन्होंने ज्यों ही क्षुल्लक, क्षुल्लिका को देखा, त्यों ही उन सब के मन में विचार आया, जिस तरह के मनुष्य के जोड़े को खोजने के लिए हम निकले है, वह जोड़ा हमें मिल गया। उनमें से एक ने कहा–

"हे बालकों, खड़े रहो, रूको।"

वे उनके पास जाते हुए परस्पर चर्चा करने लगे

एक सेवक– इस तरह का सुंदर जोड़ा धरती पर दूसरा नहीं हो सकता ।

दूसरा सेवक– देखो, इनका शरीर कितना कोमल है!

तीसरा सेवक— इनको राजा को सौंपने पर राजा की ओर से हमें बहुत बड़ा ईनाम मिलेगा। **शीघ्रता करो विलम्ब उचित नहीं है**। वे सभी युगल को घेरकर खड़े हो गये। तब तक क्षुल्लक, क्षुल्लिका को उनके आशय का अनुमान हो चुका था। धर्म के कारण उन दोनों के भीतर अपार धैर्य था। उनके चेहरे पर असीम शांति थी, चेहरे पर चिंता की शिकन तक नहीं थी। उनके चेहरे की शान्ति को देखकर एक सेवक ने कहा—देखो, इनको अपनी मौत का एहसास हो गया है, फिर भी चहरे पर ड़र नहीं है।

एक सेवक ने कहा— मेरा मन तो इन सुकुमारव्रती बालक, बालिका की आकृति से पिघल रहा है, करूणा से भर रहा है। पता नहीं हमारे राजा का मन पिघलेगा या नहीं । या इनकी बलि देगा। मेरा ह्रदय रो रहा है, इनको पकड़ना तो दूर छूने का भी मन नहीं हो रहा है।

उस सेवक से अभयरूचि क्षुल्लक ने कहा— अरे भोले जीवों, चेहरे पर भय लोभादिक के कारण होता है, हमें जीवन का लोभ नहीं है, तो मरण से भय भी नहीं है, फिर चेहरे पर ड़र कैसे दिखेगा?

एक सेवक ने कहा—अरे बातें ही करते रहोगे या फिर ईनाम की सोचोगे। जल्दी करो, हमें फूर्ति से इन्हें राजा के पास ले चलना चाहिए।

सेवक क्षुल्लक, क्षुल्लिका का हाथ पकड़ने लगे, तब अभयरूचि क्षुल्लक ने उनसे कहा—हमारे हाथ पकड़ने की जरूरत नहीं है, (हम पर विश्वास करो) हम भागकर नहीं जायेंगे, बल्कि आप लोगों की इच्छानुसार जहाँ कहोगे, वहाँ चलेंगे।

वे सब चण्डमारी देवी के मंदिर की ओर जाने लगे। रास्ते में क्षुल्लक सोच रहा था, मैं धर्ममय विचारों से निर्भय हूँ, शायद बहन क्षुल्लिका मरण को सुनकर भीतर ही भीतर ड़र रही होगी। इसलिए उसने अपनी बहन आर्यिका से कहा –"हे बहन, मरण से ड़रो मत। जैसा कर्म हम बाँधते हैं, वही समय पर उदय में आकर सुख या दुःख का कारण उपस्थित करता है। इसलिए उससे ड़रे बिना शांति रखनी चाहिए। राजा हमारे शरीर का घात करेंगे तो करें, परन्तु हमारा ज्ञानधारी शरीर अजर–अमर है। उसका घात नहीं होता। इसलिए घबराओ मत धैर्य रखो।

विशुद्ध बोधं तप एव रक्षा
ग्रामेष्वरण्येषु च संयतानाम्।
अतः कृतान्तेऽपि समीपवृत्तौ,
मातर्मनो मास्म कृथा निरीशम्।।

हे माते! यदि यमराज भी सामने आ जाये तब भी अपने आप को रक्षकहीन मत समझो; संयमधारकों की सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक् तप ही गांवों में, अरण्यों में रक्षा करते हैं।

अभयमति क्षुल्लिका– भैय्या, जिसे धर्म की शरण मिली हो, उसे भय कैसा? वह क्यों घबराए? क्यों ड़रे? भय,घबराहट ड़र उन जीवों को ही होता है, जिन्हें धर्म की शरण नहीं मिलती। हम भाग्यवान हैं कि हमें धर्म की शरण मिली हुई है, इसलिए हमारा ड़र उसी दिन निकल गया था, जिस दिन हमने घर छोड़ा था। शरीर नश्वर है, उसका मोह नहीं रहने से उसके नष्ट होने का भी हमें ड़र नहीं है।

वे दोनों स्वंय चिंतन करने लगे कि –

आत्मन्! शरीर के थोड़े समय के आनन्द के कारण तूने अनन्तकाल तक दुःख भोगे हैं। शरीर के मोह का नाम संसार हैं। शरीर में एकत्व 'शरीर मैं हूँ' ऐसी बुद्धि को ही संसारबुद्धि कहते हैं। इस शरीर से भिन्न आत्मस्वरूप का ध्यान हीं धर्म है।

इसी प्रकार की चर्चा तथा चिंतन करते हुए, वे चण्डमारी के मन्दिर तक आये। एक सेवक ने राजा को बताया, कि आपके बताये अनुसार मनुष्यों का जोड़ा लाये हैं। राजा बहुत खुश हुआ। उसे लगा, अब मुझे आकाशगामिनी विद्या तथा दिव्य खड्ग मिल गए समझो। उसने सेवकों को ईनाम देकर विदा किया। सेवक ईनाम लेकर चले गये।

ईधर पशुओं की बलि से देवी के मंदिर का प्रांगण खून से लाल हो चुका था। हड्डियों का ढेर लग चुका था। इस बीभत्स दृश्य को देखकर, राजा के अविवेक को देखकर क्षुल्लक, क्षुल्लिका सोचने लगे यहाँ का राजा कितना मूर्ख है? जो एक मामूली विद्या के लिए इतने सारे पशुओं की बलि दे रहा है। वे ऐसा सोच रहे थे, इतने में राजा मारिदत्त ने आकर क्षुल्लक, क्षुल्लिका को नमस्कार किया।

क्षुल्लक, क्षुल्लिका ने राजा को धर्मबुद्धि के आशीर्वचन रूप में कहा–

हे श्रेष्ठवंश में उत्पन्न नरोत्तम, आप स्नेह और कृपा के भंडार हो, आपका कुल अहिंसामय धर्म के आचरण से सुशोभित रहा है। आप प्रजा के नाथ हो, धर्ममय आचरण पूर्वक प्रजा का पालन आपका कर्तव्य है, न केवल मनुष्य

बल्कि राज्य के पशु पक्षियों की रक्षा करना आपका धर्म है। आपको धर्मबुद्धि हो।

क्षुल्लक के कोमल, मधुर शब्दों को सुनकर राजा का रौद्रभाव नष्ट हो गया। उसके हृदय में शुद्ध, निर्मल भाव उत्पन्न हुए। उन बालक बालिकाओं को क्षुल्लक, क्षुल्लिका के भेष में देखकर, उनकी शांत, निर्विकार मुखमुद्रा देखकर उसके विकारभाव शांत हो गए। राजा सोचने लगा–ये कितने सुन्दर, सुकुमार हैं, इन्होंने कितनी कम उम्र में तपोवन में प्रवेश किया है। तपोवन का मार्ग कितना कठोर होता है? उस पर ये कैसे चल पायेंगे? घर के भोगों को छोड़कर ये क्यों कर इस मार्ग पर आए हैं? उनको देखकर राजा मारिदत्त आश्चर्य के सागर में डूब गया। उसने क्षुल्लक से पूछा–

अहो महानुभाव आप कौन हैं? आपका क्या परिचय है? आपको देखकर मेरे हृदय धर्म और वात्सल्य के भाव क्यों उमड़ रहे हैं? मैंने सुना है, मेरे भानजे–भानजी ने बालपना त्यागकर दो तीन पहले दीक्षाएं ली है–कहीं आप मेरे भानजे–भानजी तो नहीं हों? कहीं आप देव तो नहीं हो? जो भेष बनाकर आए हों? मृत्यु सामने खड़ी होने पर भी आपको भयरहित शांत देखकर आपके बारे में जानने की जिज्ञासा हो रही है, कृपा कर अपना परिचय सविस्तार बताइए।

क्षुल्लक–हे राजन्! आप जैसे के सामने अपना चरित्र बताना वैसे ही व्यर्थ है, जैसे अन्धे के आगे नृत्य,बहरे के आगे गीत।

राजा–क्यों, कैसे, क्षुल्लक महाराज?

क्षुल्लक–जैसे जीवित वृक्ष को सींचने से लाभ होता है, सूखे वृक्ष को सींचने से नहीं। वैसे शांत या धर्ममय विचारवाले को शुद्ध चरित्र सुनाने से लाभ होता है, विकारी या अधार्मिक को चरित्र सुनाने से नहीं। **अविनयी उपदेश का पात्र नहीं होता।**

राजा–क्षुल्लक महाराज अपराध क्षमा करें। मैं अपने आप को शर्मिंदा महसूस कर रहा हूँ। मैं अधम, पापी हूँ, मुझे अवश्य ही मुझे अपने बारे में बताइए। आपके बारें में सुनने के लिए मेरा मन बेचैन हो रहा है। **क्षुल्लक**– राजन्, यदि इतनी जिज्ञासा हो रही है, मेरा चरित्र सुनना चाहते हो तो यह हिंसा का मार्ग छोड़ दीजिए। पुनः इस मार्ग पर नहीं चलने की प्रतिज्ञा कीजिए।

राजा–जो आज्ञा महाराज, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं कच्चे लोभ में पड़कर भविष्य में कभी भी हिंसा का मार्ग नहीं अपनाऊंगा। यह कहकर राजा ने उस समय बजने वाले सारे ढोल, नगाड़े बंद करवा दिये। तब तक अनेक प्रजाजन क्षुल्लक, क्षुल्लिका का चरित्र जानने के लिए वहाँ जमा हो चुके थे, भैरव जोगी भी उनके पुण्यप्रताप से उनके सामने नतमस्तक होकर बैठ गया। राजा ने क्षुल्लक, क्षुल्लिका को ससम्मान उच्च आसन पर बिठाया और स्वयं नीचे बैठ गया। उसने पुनः निवेदन किया–हे क्षुल्लक महाराज! हम सब आपका चरित्र सुनने के लिए लालायित हैं, कृपया हमारी इच्छा पूरी कीजिए।

क्षुल्लक ने सबको जिज्ञासु देखकर राजा की भव्यता को अनुमानित कर राजा व प्रजा से कहा–"हे राजन्, हे प्रजाजन, हमारा चरित्र धर्म–विद्या का उपदेश है, वैराग्य का खजाना है। आप सबकी इच्छा है, तो सुनिए।" इसके बाद

क्षुल्लक ने अपने पूर्वजन्मों की कथा कही जो निम्न प्रकार है–

हे लोगो! जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में एक अवन्ति नाम का देश था। इस राज्य में उज्जैन नाम की एक सुन्दर नगरी थी। इस नगरी के राजा का नाम यशोर्ध था। उसके चन्द्रमति नाम की रानी थी। राजा यशोर्ध और रानी चन्द्रमति का मैं यशोधर नाम का पुत्र था। जब मैं विद्या और कलाओं को सीखते हुए बड़ा हो गया, तब मेरा अनेक राजकुमारियों के साथ विवाह कराया। मैं सुख–सागर में मग्न था, समय बीतते देर नहीं लगी।

एक दिन पिताजी ने सिर पर सफेद बाल देखा, तब उन्हें संसार, शरीर, भोगों से वैराग्य हो गया। उन्होंने दीक्षा का मन बनाया, मुझे एकान्त में बुलाकर कहा–बेटा हमारा कुल सदा से ही अहिंसा का पुजारी रहा है। हमारे कुल में कुदेव, कुगुरू, कुधर्म का सेवन नहीं किया जाता है। देह छोड़ना अच्छा है, परन्तु कुदेवादिक का सेवन अच्छा नहीं है। हमारे बाद आप राजा बनोगे, अतः इन अहिंसक परम्पराओं का पालन करना तथा कराना। राजा ही प्रजा का रक्षक तथा पालक होता है। इत्यादि धर्म का उपदेश देकर उन्होंने दीक्षा ली।

अब मैं यशोधर उज्जयिनी का राजा बना। मेरी अमृतमति नाम की एक सुन्दर रानी थी। वह मुझे सब रानियों में प्रिय थी। मैं उसके मोहपाश में बँधा था। मैं ज्यादातर समय उसी के पास रहता था। राजकाज पर विशेष ध्यान नहीं दे पाता था।

मेरा एक यशोमति नाम का सुशील पुत्र था। एक दिन मैं सोच रहा था कि यह राज्यभार यशोमति को

सौपकर अमृतमति के महल में सदा के लिए रहूँ। इसी सोच–विचार में कब शाम हो गयी, पता ही नहीं चला। मैंने सेवक के द्वारा अमृतमति के पास संदेश भिजवाया कि "मैं उसके महलों में आऊँगा।" सेवक उसको संदेश देकर आ गया।

मैं भी सज–धज कर रानी अमृतमति के महल में गया। उस समय अमृतमति इतनी सुन्दर और प्रिय लग रही थी, जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। कुछ समय तक रानी से हंसी–मजाक आदि में समय बिताकर मैं सो गया, परन्तु मुझे नींद नहीं आयी, मुझे सोया समझ कर वह महल से निकली। मैंने सोचा आधी रात से भी अधिक समय हो गया है यह रानी सजधज कर कहाँ जा रही होगी?

मैं भी उस बात का पता लगाने के लिए उसके पीछे चोरी–छिपे चला गया। वह एक कुबड़े, बदसूरत, बदबूंदार शरीर वाले हमारे एक नौकर की कुटिया में गई। उसके जाते ही उस कुबड़े ने उसे डाँटना–फटकारना शुरू कर दिया–

कुबड़े ने कहा– तूने इतना विलम्ब क्यों किया? रोज की तरह शीघ्र क्यों नहीं आई? यह कहकर वह उसे पीटने लगा।

अमृतमति–हे स्वामी! गृहकार्यों से फुरसत नहीं मिल पाई, इसलिए देरी हो गई।

कुबड़ा– आज बहुत विलम्ब से आई हो, वापिस चली जाओ।

अमृतमति–नाथ, इस तरह से मत दुत्कारिये, आपके बिना मैं मर जाऊँगी। आपका विरह सहना मुझसे सहन नहीं होता है। आपके बिना मुझे राज्य, महल आदि सब

व्यर्थ लगते हैं। मेरा वश चले तो मैं राजा को मारकर चौबीसों घंटे आपके पास ही रहूँ।

कुबड़ा–अबकी बार माँफ करता हूँ, दुबारा ऐसी गलती मत करना।

अमृतमति–मैं कसम खाती हूँ, ऐसी गलती दुबारा नहीं होगी। इसके बाद दोनों आलिंगन में बंध गये। मेरा क्रोध धीरे–धीरे बढ़ रहा था, उन दोनो को उस हालत में देखकर मेरा गुस्सा सातवें आसमान पर था, मैंने उनको मारने के मकसद से म्यान से तलवार निकाली। उस तलवार की धार की ओर देखा पर मेरे विचार अचानक बदल गए। अरे, इस तलवार ने युद्ध में बड़े–बड़े वीरों को पराजित किया है, उस तलवार के द्वारा इन तुच्छ, पापी जीवों को क्यों मारूँ? क्षत्रिय शिक्षा के प्रारम्भ में ही बताया जाता है कि शस्त्रों का प्रयोग स्त्रियों पर, युद्ध से भागने वालों पर, नपुंसकों, अपंग एवं वृद्धों पर नहीं करना चाहिए तथा शस्त्रों का प्रयोग धर्म की रक्षा के लिए ही करना चाहिए। यहाँ यह रानी स्त्री है और कुबड़ा अपंग है, इन्हें मारकर तलवार का अपमान नहीं करना चाहिए।

यह सोचकर मैंने तलवार पुनः म्यान में रख दी। चुपचाप लौटकर महल में आकर लेट गया। थोड़ी देर बाद अमृतमति आकर मेरे पास ही लेट गई। उसने जब मुझे छुआ, तब ऐसा लगा, जैसे मुझे किसी नागिन ने छुआ हो। मुझे उससे विरक्ति हुई थी। न केवल उससे बल्कि सारे संसार से विरक्ति हुई थी। मैं बिस्तर पर पड़े–पड़े सोच रहा था–

संसार का स्वरूप कितना विचित्र है। जिसे मुझ जैसा राजा दिन–रात चाहता था, जिसके कारण वह

महारानी कहलाती थी। रानियों में पटरानी थी। महल, दास, दासियाँ सभी सुविधाएँ थीं। मुझ जैसे सुन्दर, स्वस्थ सम्पन्न पुरूष को छोड़कर एक कुबड़े, घिनौने, तुच्छ नौकर पर आसक्त होकर उसके साथ रमण कर रही है। जिस घिनौने पुरूष को कोई सभ्य, शालीन महिला देखना भी पसंद नहीं करें, ऐसे पुरूष पर पटरानी जैसी महिला आसक्त हो जाये कि महाराजा पति को मारना पसंद करें। यह कैसी विचित्रता है? संसार की विडम्बना कैसी है? रानी की बुद्धि को धिक्कार है, जो ऐसा कर रही थी। कहाँ मुझ जैसा राजा और कहाँ वह नीच, रंक, दरिद्र, परजीवी नौकर, मुझे धिक्कार है, जो ऐसी रानी के प्रेम में पड़ा हूँ। मुझे यह संसार विचित्र, भयावह दिखने लगा। मेरा मन सब ओर से उदासीन हो गया था। संसार में जो स्नेह का बन्धन है, वही दुःख का कारण है। जो इन्द्रियों का सुख है, वह पाप का बंध कराकर नरक आदि में ले जाने वाला है।

यह शरीर जो रोगों का घर है, धोने पर पवित्र नहीं होता, सुगन्ध से सुगन्धित नहीं होता। बल्कि इसके सम्पर्क से सुगन्धित वस्तु भी अपवित्र, दुर्गन्धित हो जाती है। यह क्षणभंगुर शरीर पोषण करने पर भी बलवान नहीं होता, इसे प्रसन्न करने पर भी अपना नहीं होता। चन्दनादि से मालिश करने पर भी बदरंग, झुर्रियोंवाला, रूखा ही रहता है। इस प्रकार शरीर के स्वरूप को जानकर धर्म में लगाना चाहिए। संसार असार है। वस्तुएँ पराधीन हैं। धर्म ही सार है, आत्मा ही स्वाधीन है।

यह सोच मैंने मन ही मन दीक्षा लेने का विचार किया था। लेकिन यह विचार मैंने किसी को नहीं बताया। जैसे–तैसे रात बीत गयी। सुबह होन पर मैंने रात की बात

का किसी को आभास नहीं होने दिया। सामान्य दिनों ही तरह नहा–धोकर कर राज–दरबार में गया।

राज–दरबार में राजसेवक मेरे ऊपर चंवर ढोर रहे थे, सभामण्डप में नर्तकियाँ नृत्य कर रही थीं, एक ओर संगीतकार संगीतकला दिखा रहे थे, मध्यमण्डप में चारण एवं भाट हमारी स्तुति गा रहे थे, परन्तु मेरा मन उदास था। इसलिए मुझे वहाँ कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। पहले अच्छे लगने वाले ये चीजें, अब चुभने लगी थीं। सच है–

राग उदै भोगभाव लागत सुहावने से,
विन राग ऐसे लागे जैसे नाग कारे हैं।
राग ही सौं पाग रहे तन में सदीव जीव,
राग गए आवत गिलानी होत न्यारे हैं।
राग ही सौ जगरीति झूठी सब साची जानै,
राग मिटै सूझत असार खेल सारै हैं।
रागी विनरागी के विचार में बड़ोई भेद,
जैसे भटा पच काहू काहू को बयारे है।

अर्थः– अंदर उस जाति का राग हो तो भोग अच्छे लगते है, भीतर उस जाति का राग न हो तो वे भोग काले नाग की तरह भयावह लगते हैं। राग के कारण ही जीव शरीर में आसक्त हो रहे हैं, शरीर संबंधी राग नष्ट होने पर जीव को यह शरीर मलीन, दुर्गन्धमय दिखता है, उसे ग्लानि होने पर उसके प्रति मोह नहीं रहता। राग के कारण ही झूठीं जग की रीतियाँ सच्ची लगती हैं। राग के नष्ट होते ही सारे खेल असार दिखते है। रागी और वीतरागी के विचारों में जमीन–आसमान की विरूद्धता है। जैसे बैंगन किसी को हजम होते हैं, किसी को बादी करते हैं।

उस समय मैं दीक्षा का कारण ढूँढ रहा था राजदरबार में मंगलगीत के बाद विद्वानों ने सरल कथाएँ प्रारम्भ की थी। उन धर्ममय कथाओं से मुझे अच्छा लगा।

उसके बाद राजदरबार में मेरी माँ चन्द्रमति आई। उस समय दीक्षा का विचार मन में रखकर एक झूठी कहानी मैंने गढ़ी। माँ से कहा–

हे माते! आज रात को मैंने एक भयावह सपना देखा है। सपने में देखा कि एक विकराल राक्षस मेरे सीने पर बैठ गया, और कहने लगा–"तू दीक्षा लेकर जंगल चला जा, नहीं तो तुझे मार दूँगा। तू जीवित रहना चाहता है तो दीक्षा लेकर वन में रह।" यह कहकर वह चला गया।

हे माते! तभी से मेरी आँखों में नींद नहीं है। तभी से मैं ड़रा हुआ हूँ। कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है। मृत्यू आँखों के सामने नाचती दिखाई दे रही है। इसलिए हे माते! मुझे जीवित देखना चाहती हो तो दीक्षा की अनुमति दीजिए।

मुझे और आपको भी मेरा जीवन ही प्यारा है, मुझे राज्य, परिवार, धन किसी से मोह नहीं रहा है। उस दुष्ट स्वप्न की शांति के लिए दीक्षा के अलावा अन्य कोई उपाय नहीं है।

इसके बाद माँ **जो कि मिथ्यावासनाओं से भरी थी** ने कहा–

बेटा हमारी कुलदेवी चण्डमारी देवी है, उसको बलि देने से तुम्हारे स्वप्न की शांति हो जायेगी।

मुझे माँ से ऐसे उत्तर की अपेक्षा नहीं थी। मेरा सिर चकरा गया। मैंने माँ से कहा–

हे माते! जीवहिंसा के समान दूसरा कोई महापाप नहीं है। किसी का वध करना, किसी को कष्ट पहुँचाना हिंसा है।

जो दूसरों को दुःख देकर सुख पाना चाहता है, वह अग्नि के सेंक से करके शीतलता की इच्छा रखता है। हम जिन्हें इस जन्म में मारते हैं, वे अगले जन्म में हमारी मृत्यु के कारण बनते हैं। हमने किसी को नुकसान पहुँचाया तो हमारा भी बुरा ही होगा।

अहिंसा परमो धर्मः अहिंसैव भूतानां मातृवदुपकारिणी।

<u>अर्थः</u>– अहिंसा ही श्रेष्ठ धर्म है। **अहिंसा प्राणियों पर माता के समान उपकार करने वाली होती है।** पिताजी आदि हमारे पूर्वजों ने अहिंसा को ही परम धर्म माना है, उसका पालन किया है। पिताजी ने दीक्षा से पहले इसी का ध्यान रखने के लिए कहा था। मैं किसी भी कीमत पर अहिंसा का त्याग नहीं करूँगा। मुझे स्वयं मरना मंजूर है, परन्तु बलि देकर हिंसा करना मंजूर नहीं है।

माँ मेरे कठोर निर्णय को समझ गई। उसने सोचा कि बेटा यशोधर किसी भी तरह से बलि देने के लिए तैयार नहीं होगा। इसलिए उसने कहा– बेटा भले ही जिंदा मुर्गे की बलि मत दो, पर आटे का मुर्गा बनाकर उसकी बलि देंगे। उससे प्रसन्न होकर देवी तुम्हारे संकट को दूर कर देगी।

इस पर मैंने कहा–

माते! देवी को प्रसन्न करने के लिए चोर बलि देते हैं, फिर भी पकड़े जाते हैं। जो राजा बलि देता है, वह भी युद्ध में हार जाता है। बलि देते–देते भी लोग मर जाते हैं। किसी जीव को मरवाकर खुश होने वाली देवी भी कैसी

देवी है? हे माते! ऐसी झूठी मान्यताओं से ही तो अंधविश्वास बढ़ते हैं। इसलिए ऐसी आटे से बनी चीजों की बलि देना भी ठीक नहीं है। इससे अच्छा हो कि मैं अपनी ही बलि स्वयं दे दूँ। यह कहकर मैंने तलवार निकाल अपने घात की इच्छा से उसे ऊपर उठाया, इतने में माँ ने मेरी तलवार रोकी, मेरा हाथ पकड़ा और कहा–

बेटा, ऐसा अनर्थ मत करो। यह कहकर वह मेरे पैरों पर गिरकर कहने लगी– बेटा आटे के मुर्गे की बलि की ही तो बात है, उसमें जीव तो है नहीं सिर्फ मेरे खातिर इतना–सा कहा, मान।

माँ की आँखों के आँसू और उसकी दुःखी दशा देखकर मुझे उस पर दया आ गई। नहीं चाहते हुए भी मैं माँ की खातिर उस कुलदेवी के मंदिर गया। वहाँ आटे से बने मुर्गे पर मैंने तलवार चला उसकी गर्दन धड़ से अलग कर दी। जिस समय उस मुर्गे पर तलवार चलाई उस समय मेरे सारे शरीर पर रोमांच हो गया। मेरा सिर चकरा गया। उस मुर्गे के शरीर से साक्षात् मुर्गे की–सी आवाज सुनाई दी। मेरी अन्तरात्मा ने कहा– तूने अपना धर्म क्यों बिगाड़ा? पिता के वचनों को क्यों भूल गया? परन्तु होनि को कौन टाल सकता है?

तादृशी जायते बुद्धिः, व्यवसायोऽपि तादृशः।
सहायाः तादृशाः सन्ति, यादृशी भवितव्यता।।

अर्थः– बुद्धि वैसी ही हो जाती है, प्रयत्न भी वैसे ही हो जाते हैं, सहायक भी वैसे ही मिलते हैं, जैसी होनी होती है।

जो अनर्थ होना था, सो हो गया। जो नहीं करना चाहिए था, वह कर गया। जो पाप का बंध होना था, सो हो गया। वह संकल्पवाली संकल्पी–हिंसा थी।

उसके बाद आटे में घी आदि मिलाकर सबको बांटा गया। सबने उसे मांस की कल्पना से सेवन किया। सबने खाया आटा, पर मांस–भक्षण की कल्पना से सबको मांस भक्षण का पाप लगा। इससे मेरा वैराग्य और बढ़ गया। मंदिर से लौटकर मैंने अपने पुत्र यशोमति का राज्याभिषेक किया। मेरे हावभावों से अमृतमति समझ गई कि मैं दीक्षा लूंगा। वह मेरे पास आकर कहने लगी–

हे नाथ! भले ही नहीं बता रहे हैं, पर आपके हावभावों से मैं समझ चुकी हूँ कि आप दीक्षा का संकल्प कर चुके हैं, आप स्वयं दीक्षा लेंगे, तपोवन जायेंगे। पर इस दासी का एक अंतिम निवेदन स्वीकार कीजिए, दासी के पाप धुल जायेंगे, आज का भोजन हमारे महल में कीजिए। उसके बाद मैं भी आपके साथ दीक्षा लूंगी। जब आप ही नहीं रहेंगे तो मैं यहाँ रहकर क्या करूँगी? मैं भी आपके साथ ही दीक्षा लूँगी।

उसके शब्दों में कुछ और था, और उसके मन में कुछ और था, पर मैं उसकी कपटलीला को समझ नहीं पाया। मैंने सोचा एक समय के भोजन की ही तो बात है। उसके बाद अमृतमति भी सही मार्ग पर चलेगी। मैंने उसे कहा–ठीक है।

अमृतमति ने भोजन तैयार कराया। मुझे मेरी माँ के साथ भोजन के लिए बुलाया। मैं और माँ भोजन के लिए बैठ गए। अमृतमति ने अपने हाथों से भोजन परोसा। एक लड्डू मेरी व एक लड्डू मेरी माँ की थाली में यह कहकर

रखा कि ये लड्डू मेरी माँ के घर से आए है; माँ ने कहा है कि यह लड्डू अपने दामाद और समधन को अवश्य खिलाना। सबसे पहले इसे ही आप दोनों खाइए। इसी से भोजन की शुरूआत कीजिए। मैंने और मेरी माँ ने वैसा ही किया। हम दोनों ने जैसे ही वे लड्डू खाये। दोनों को उल्टियाँ होने लगीं। क्योंकि उन लड्डुओं में जहर मिला हुआ था। मुझे खाने के बाद समझने में देर नहीं लगी कि लड्डू में जहर था। मैंने तुरंत दासी से जैसे–तैसे कहा–विषबाधा, विषबाधा, राजवैद्य को बुलाइए। राजवैद्य का नाम सुनते ही वह अमृतमति घबरा गई। वह समझ गई कि राजवैद्य आने पर हमारा ईलाज हो जायेगा और हम बच गए तो अमृतमति के लिए कठोर सजा तय है। उसने एक और नाटक किया। वह मुझे लिटाकर अपने बाल बिखराकर मेरे गले से झूठी रोती हुई लिपट गई। भीतर ही भीतर उसने दांतों से गले का हार तोड़ा, हार के धागे से मेरे गले को दबा दिया। तड़प–तड़प कर कुछ ही पलों में मैं मर गया। मुझे मृत देख मेरी माँ भी मर गई। राजवैद्य के आने से पहले ही हम दोनों का काम तमाम हो गया।

बिना विचारे, बिना सोचे, हित के काम में देरी करने वालों की ऐसी ही दुर्गति होती है। इसलिए कहा गया है कि **शुभस्य शीघ्रम्।** शुभ काम में सोच–विचार करते हुए देरी नहीं करनी चाहिए। न जाने अगले पल में क्या हो जायेगा?

हमारी मृत्यु से चारों ओर हाहाकार मच गया। मेरा पुत्र यशोमति फूट–फूट कर बहुत रोया। मेरे बिना उसे सब कुछ सूनासा दिखने लगा। उसको इस तरह विलाप करते देख, वृद्ध सेनापति ने उसे समझाया–

बेटा, जीवन क्षणभंगुर है, **इस धरा पर जो भी आया, वह धरा का धन धरा पर धरा का धरा रख अकेला ही चला गया। बड़े–बड़े प्रतापी राजा भी एक दिन एकाकी चले गये। यह खेल हर कोई खेला, पर इस संसार के खेल में हर कोई हारकर चला गया।** इस खेल के बीच में संयम धारण करने वाला ही तर गया। इसे छोड़ने में विलम्ब करने वाला डूब जाता है। अपने पिताजी को ही देख लीजिए, देरी की वजह से इस तरह दुःखद अन्त में समा गए।

यशोमति– सेनापतिजी, हमें दीक्षा लेकर जाने दीजिए। हमने संसार देख लिया है।

सेनापति बेटा, अभी कुछ दिन राज्य की व्यवस्था संभालकर राज्य को अच्छे हाथों में सौंपकर आप दीक्षा लीजिए। मेरे पास समय नहीं है, मैं वृद्ध हो चुका हूँ, मुझे दीक्षा के लिए अनुमति दीजिए। यशोमति को समझाकर वृद्ध सेनापति ने स्वयं दीक्षा ली।

मेरे शव को लेकर गए तब मेरी अन्य रानियाँ श्मशान की ओर कुछ दूरी तक गई, पर अमृतमति नहीं गई। वह कुबड़े में आसक्त थी। वह उस के पास गई। क्योंकि–

एक बार की बात उसने मेरे साथ कुबड़े का गीत सुना था। उस दिन उसने अपनी दासी से पूछताछ कराई। चतुर दासी ने आकर बताया कि रानीजी वह आपके योग्य नहीं है, कुबड़ा है, मलिन है, बदसूरत, बदरंग है, उसमें मन मत लगाइए। उसने दासी को धमका कर कहा– जैसा मैं कहती हूँ, वैसा ही करो, ध्यान रहे इस बात का किसी को पता न लगे। दासी की सहायता से वह कुबडे से मिली तथा उस दिन से वह कुबड़े के साथ ही समय बिताती थी।

आज उसने मेरे अंतिम संस्कार तक भी धैर्य नहीं दिखाया। मेरे अंतिम संस्कार से पूर्व ही उस कुबड़े के पास पहुँच गई।

मेरे पुत्र ने मेरे निमित्त अनेक प्रकार के दान दिए। देखो, संसार में जीते जी सेवा या सहायता नहीं करते, मरने के बाद दान देते हैं। मरने के बाद कितना ही दान–पुण्य करो, मरनेवाले को कुछ भी प्राप्त नहीं होता। मरा हुआ नरक गया तो यह वहाँ दान नहीं पहूँचता। मरा हुआ स्वर्ग गया तो इस दान की वहाँ आवश्यकता नहीं होती।

यह जीव अपने किए शुभ या अशुभ भावों से सुगति या दुर्गति पाता है, बाद के किए दान–पुण्य से नहीं। उल्टे ऐसी विपरीत मान्यताओं से पाप का ही बन्ध होता है। मरणोपरान्त मेरे पुत्र यशोमति ने बहुत दान दिए, परन्तु मेरी गति मेरे परिणामों से तय हो चुकी थी।

मैं मरकर हिमवन् पर्वत की दक्षिण दिशा के क्षुद्र नाम के वन में मयूर (मोर) बना। माँ के पेट की गर्मी सहन करने के बाद गर्म रेतिले स्थान पर मेरा जन्म हुआ। माँ के द्वारा खिलाये अन्न कणों से मैं चलने–उड़ने योग्य हो गया।

एक दिन एक शिकारी भील ने मेरी माँ को मारकर और मुझे जीवित पकड़कर घर ले गया। जब शिकारी मुझे पकड़कर ले जा रहा था तो मैं बहुत रोया, परन्तु शिकारी को जरा भी दया नहीं आयी। शिकारी ने मेरी मृत माँ को कोटपाल को बेच दिया और मुझे अपने घर ले जाकर पिंजरे में बंद कर दिया। मुझे देख भीलनी ने पति से कहा– अरे दुष्ट, तू इस बालक को उठाकर क्यों लाया? इसको मारने से क्या होगा? इसका एक ग्रास भी तो नहीं बनेगा? क्या इससे सबके पेट भर जायेंगे? तू बड़ी मोरनी

को तो कोटपाल को दे आया और यह छोटा बालक घर लाया है। अब क्या तुझे मारकर खाऊँ, बच्चों को खिलाऊँ? तू जल्दी से चला जा, खाने की कुछ व्यवस्था कर। उस की बातों से ड़रा हुए शिकारी ने भीलनी से कहा—अरे, तू क्यों घबड़ाती हो, अभी जाकर इस बालक को बेचकर तुझे अनाज लाकर देता हूँ। तब अच्छी तरह से पेट भर जायेंगे।

उसके बाद वह शिकारी मुझे लेकर कोटपाल के पास गया। मुझे कोटपाल को सौंपकर उसके बदले अनाज लेकर घर गया। कोटपाल को मुझ पर दया आयी, उसने मुझे मारा नहीं, बल्कि उसने मेरा अच्छी तरह से पालन—पोषण किया।

जब मैं बड़ा हो गया, तब मैं बहुत ही सुंदर दिख रहा था। मेरी सुंदरता को देखकर कोटपाल ने सोचा—यदि इसे उज्जयिनी ले जाकर राजा यशोमति को दे आऊँ तो राजा प्रसन्न हो जायेंगे, शायद कुछ बड़ा ईनाम भी दे देंगे।

यह सोच वह कोतवाल मुझे लेकर राजा यशोमति को भेंट—स्वरूप दे आया।

मेरी माँ चन्द्रमति लड्डू के जहर से मरकर कर्नाटक देश में श्वान (कुत्ते) के रूप में उत्पन्न हुई थी श्वान बहुत सुन्दर और बलवान था। वहाँ के राजा ने उस श्वान को राजा यशोमति को भेंटस्वरूप दिया था।

राजा यशोमति को पूर्वसंस्कारों के कारण हम दोनों के प्रति बहुत प्रेम हो गया था। वह हमारा विशेष ध्यान रखता था। हमारी देखभाल के लिए विशेष नौकर नियुक्त किए थे। वह जब कभी आकर हमारे शरीर पर हाथ फेरकर खुश होता था।

देखों कर्मों की विचित्रता जहाँ का मैं राजा था, मेरी मॉ राजमाता थी। जहाँ हमारा आदेश चलता था। मेरा जीवन उसी राज्य में, राजधानी में, उसी महल में एक छोटे–से पींजरे में कैद होकर रह गया। मेरी माँ कुछ समय पहले राजमाता थी, अब एक श्वान बनकर गले में जंजीर बंधी एक छोटी–सी कोठड़ी में रहती है। यह सब कर्मों की लीला और विचित्रता है। अवस्था **बदलते ही सम्बन्ध बदल जाते हैं।** पहिचान नहीं रहती।

एक बार वर्षा का समय था। आकाश बादलों से घिर गया था। मौसम सुहावना था हमारे सेवक मुझे (मोर) को और मेरी माँ श्वान को लेकर छत पर ले गये। वहाँ मैं अपनी दीनता पर आँसु बहा रहा था। इतने में मुझे कूबड़ा और अमृतमति एक साथ एक जगह दिखे। पूर्व जन्म के वैर के कारण मुझे उन दोनों से ईर्ष्या हुई। विशेष कर अमृतमति पर बहुत गुस्सा आया। मैंने बिना कुछ विचार किए आंव देखा न तांव अमृतमति के सिर पर चोंच से प्रहार किया। नुकिले चोंच के प्रहार से अमृतमति तिलमिला उठी। वह संभल पाये, उससे पहले तीखें नाखुनों और चोंच से फिर प्रहार किये। इतने में वह जोर से चिल्लाई–"बचाओ, बचाओ।"

मुझे उस समय जातिस्मरण ज्ञान हुआ था। तब मैं सोचने लगा–जब मैं शक्तिशाली राजा था, मेरी आज्ञा चलती थी। उस समय तो इसको मार नहीं सका। अब इस शक्तिहीन पशु की दशा में कैसे कर पाऊंगा? यह सोच दुःखी हो रहा था।

अमृतमति की पुकार के कारण दासियाँ आ गईं। जिसके हाथ जो लगा, उसे फेंककर मारने लगीं। किसी ने

डण्डी फेंककर मारी, किसी ने पत्थर मारा, किसी ने कुछ, किसी ने कुछ। उससे मेरे पैर लंगडे हो गए। शरीर पर घाव हो गए। मैं अपनी जान बचाने के लिए इधर से उधर भागा। ये वे ही लोग हैं, जो मेरे एक इशारे पर इधर से उधर भागते थे, अब वे मेरी जान के पीछे पड़ गए थे। पकड़ो–पकड़ो– शब्दों को सुनकर मेरी माँ के जीव कुत्ते ने मेरी गर्दन अपने विकराल दांतों से ऐसे पकड़ी कि मेरे प्राण ही छूट गए। इतने में मेरे पुत्र यशोमति ने आकर मुझे छुड़ाने का प्रयत्न किया, पर सब व्यर्थ गया, देखो, जो पहले मेरी माँ थी, उसी ने मेरी गर्दन पकड़ कर मारने में जरा भी दया नहीं दिखाई। मैं (मोर) मेरे पुत्र यशोमति को बहुत प्रिय था, उसे गुस्सा आया। उसने गुस्से में आकर पास पड़े ड़ण्डे को उस कुत्ते के सिर पर दे मारा, जिससे वह कुत्ता भी उसी समय मरा। देखो, कर्मलीला माता के जीव ने पुत्र के जीव को मारा। पोते के जीव ने दादी के जीव को मारा।

यशोमति ने मेरे (मोर) के निधन पर बहुत दुःख किया। और दादी के जीव (श्वान) को मृत देखकर भी खूब रोया।

उसने हम दोनों का अंतिम संस्कार राजकीय **ठाट–बाट से कराया। पिंडदान आदि कराया।**

मोर के शरीर से निकल कर मेरा जीव सुवेलगिरि के पश्चिम भाग में महाशुभ नाम के जंगल में कानी नेवली के गर्भ में गया। यथासमय मेरा जन्म हुआ।

मेरे पाप का उदय देखो, मेरी माँ के स्तनों में दूध नहीं था। मैं उसके स्तन चाटने लगा, सो दूध बिना मेरी भूख नहीं मिट रही थी। मैं भूखा–प्यासा पड़ा रहा,

चलने–फिरने में असमर्थ था। वहाँ मुझे एक छोटा साँप दिखा और मैंने उसे तुरन्त ही निगल लिया। फिर इसी तरह साँप आदि को खाकर बढ़ने लगा। मेरी माँ का जीव श्वान के शरीर से निकल उसी महाशुभ नाम के जंगल में भयंकर विषधारी सर्प बना।

एक दिन वह सर्प बिल में घूस रहा था, तब मैंने उसकी पूंछ पकड़कर काट डाली। गुस्से में लौटकर उस साँप ने अपने मुख से जहरभरी आग मुझ पर छोड़ी। और अपने दांतों से मेरी पीठ मरोड़ी, जिससे मैं घायल हो गया। मैंने उसके मुँह को ऐसा चबाया कि वह तत्काल मर गया। मेरा खून बहुत बह गया था, जिससे मैं भी उसी समय मर गया।

देखो, कर्म की विचित्रता, कर्म की विचित्रता के कारण कुछ काल पहले के माता व बेटे के जीव एक दूसरे को मार रहे हैं।

यशोधर–मोर–नेवला बने थे।

चन्द्रमति–कुत्ता–सांप बने थे।

नेवले के शरीर से निकल कर मेरा जीव उज्जयिनी नगरी के पास सिप्रा नदी में मगरमच्छी के गर्भ में आ गया। यथासमय जन्म लेकर बड़ा हो गया। मेरी मॉं चन्द्रमति का जीव सर्प के शरीरे निकल कर उसी नदी में संशुमार जाति का जलचर जीवों का स्वामी बना। मुझे देखकर संशुमार को पूर्वभव का बैर याद आ गया और उसने मुझे अपने तीखे नाखुनों से चीरना शुरू कर दिया था कि इतने में वहीं पास में यशोमति राजा की दासियाँ जलक्रीडा कर रही थी। वहाँ कुब्जिका दासी को किसी दासी ने धक्का दिया, सो वह कुब्जिका दासी मेरे ऊपर आकर गिर गई। उस संशुमार ने

मुझे छोड़कर उस कुब्जिका दासी को पकड़कर दांतों और नाखुनों से चीरने लगा था, बाकी दासियाँ भाग कर राजा यशोमति के पास गईं, उन्होंने राजा से कहा–आपकी कुब्जिका दासी को संशुमार ने चीर कर मारा है। राजा ने धीवरों को आदेश दिया कि संशुमार को शीघ्र पकड़ो, स्वयं भी सिप्रा नदी पर पहुँच गया। धीवरों ने संशुमार के कंठ में बांस फंसा कर उसे बाहर निकाला। गुस्से में आकर यशोमति ने उसे जिंदा ही अग्नि में जलाने का आदेश दिया। सेवकों ने आग जलाकर उसे अग्नि में जला दिया।

जलकर मरते समय की उसकी चित्कारें शब्द सुनकर मैं बाहर आ गया। धीवरों ने मुझे देख मेरे ऊपर जाल ड़ाल दिया। मैं जाल में फँस गया। उन्होंने मुझे देख मेरे ऊपर जाल ड़ाल दिया। मै जाल में फँस गया। उन्होंने पैरों के प्रहारों से मुझे घायल कर दिया, किसी ने कहा – इसे मारो मत, क्योंकि इसके मरने पर यहाँ बदबू फैलेगी। मेरा पुत्र यशोमति मेरे शरीर को उलट–पलट कर देखने लगा । किसी ने कहा– यह पांडुरोहिति जाति का मत्स्य है, यह देव व पितरों की बलि के योग्य है । मेरा पुत्र कुसंगति से मांसाहारी हो गया था। बलि देने में विश्वास करने लगा था, उसने आदेश दिया कि ''इसे मेरी माँ अमृतमति के महल में ले जाइए। '' सेवक तुरंत ही अमृतमति के महल में ले गए । वहाँ अमृतमति ने मेरी पूंछ कटवाकर उसमें नमक–मिर्च–मसाले भरकर पकाया। मेरी पूंछ को पितरों के नाम पर समर्पित कर उसका प्रसाद बटवाया। और शेष शरीर के मांस को सभी ने देवों का प्रसाद समझ कर खाया।

जिस समय मुझे गरम तेल में पकाया जा रहा था, उस समय मुझे जातिस्मरण ज्ञान हो गया, उससे मैंने समस्त परिवार को जान लिया था, इसलिए उस समय मुझे शारीरिक कष्ट के साथ बहुत ही मानसिक कष्ट पहुँचा। पर उस समय सहन करने के अलावा और कोई उपाय नहीं था। हे मारिदत्त! देखो संसार का अंधविश्वास! मेरा ही मांस, मेरे निमित्त ही बटवाया और खाया।

मेरी माँ चन्द्रमति का जीव संशुमार के शरीर से निकल कर उज्जयिनी के पास के पार्श्व गांव में बकरी बना।

पांडुरोहित मत्स्य के शरीर से निकल कर मेरा जीव बकरी के गर्भ में आया। यथासमय मैं बकरे के रूप में जन्मा। जब मैं जवान (बकरा) हुआ तब कामान्ध होकर अपनी माँ के साथ सम्भोग कर्म कर रहा था कि इतने में उस झुण्ड के स्वामी बकरे ने मुझे देख अपने सींगों से मुझे मार ड़ाला।

मैं मरकर उसी बकरी के गर्भ में अपने ही वीर्य से बकरा बना। (वीर्य में सात दिन तक जीव आसकता है। नहीं तो आठवें दिन वह वीर्य खिर जाता है।) जब मैं बकरी के गर्भ में था। उस समय एक दिन यशोमति राजा शिकार के लिए वन में गया था। पर उस दिन उसे शिकार नहीं मिला, लौटते समय उसने उस बकरी और झुण्ड के स्वामी बकरे को संभोग करते देख लिया। क्रोध में आकर उसने अपने भाले से उन दोनों को काट कर मारा। उस समय बकरी के गर्भ में तडफडाते हुए हाथ पैर चलाने लगा। दयावश यशोमति ने बकरी का पेट चीरकर मुझे बाहर निकाला और बकरीपालक को सौंपा। बकरीपालक ने मेरा

लालन–पालन किया। मैं वहीं बकरीपालक के घर बड़ा हुआ।

एक दिन राजा यशोमति ने अपनी कुल देवी के मंदिर जाकर मन्नत मांगी कि हे देवी, आज मुझे शिकार मिला तो मैं तुझे भैंस की बलि दूंगा। वह शिकार के लिए गया। उस दिन उसे तुरंत शिकार मिल गया लौटकर उसने एक मोटी ताजी भैंस मंगायी। उसे मारकर उसकी बलि दी।

कुदैवयोग से रसोइयों ने मुझे लाकर वहीं पास में बांधा था। संयोग से ऊपर उडती हुई चील से एक मांस का टुकड़ा मेरे पास गिरा। उस मांस के टुकडे को सूंघकर मैं जोर से उछला।

हे मारिदत्त! उस समय भी मुझे जातिस्मरण ज्ञान हो गया। वे सब भोजन कर रहे थे। मैं भूखा–प्यासा बिलख रहा था। मेरा सारा परिवार दावत उड़ा रहा था, उनका पितर मैं बकरा भूखा प्यासा तड़प रहा था। मेरे निमित अपार धनराशि का दान किया, पर उस समय मुझे पेट भरने के लिए एक कण भी नहीं मिला। मुझे वहाँ सब दिखे, परन्तु अमृतमति नहीं दिखी। मैं अमृतमति के बारे में सोच ही रहा था।

इतने में सड़े हुए मांस की बदबूं हवा के झोंके के साथ आई। उसी समय मुझे दासियों की बातचीत सुनाई दी। एक दासी दूसरी दासी से पूछ रही थी–

बहन, यह मरे हुए भैंसे के सड़े हुए मांस की बदबूं कहाँ से आ रही है?

दूसरी दासी – अरी भोली बहना, ऐसी बदबूं कहीं भैंस के मांस की नहीं होती है। यह तो मुझे मरी मछली के सड़े हुए मांस जैसी लग रही है।

तीसरी दासी – अरी बहनों, यह बदबूं न तो भैंस के सड़े मांस की है, न मरी मछली के सड़े मांस की है। मुझे तो यह बदबूं किसी कोढी के कोढ़ से गले शरीर के मांस की तरह लग रही है।

चौथी दासी– अरी नासमझदारों, क्या टर्र–टर्र लगा रखी है, कुछ पता वता तो है नहीं। कर रही हैं धांय–धांय।

एक दासी– इतनी ही चतुर बन रही हो तो बताना, किसकी बदबूं है?

चौथी दासी– (धीरे से) सुनो एक खास बात, पर मेरी कसम खाओ, किसी को नहीं बताओगीं।

सब ने एक साथ कहा– ठीक है, हम सब कसम खाकर कहती हैं, हम किसी को नहीं बताएंगी।

चौथी दासी– सुनो, दुष्टा अमृतमति ने कूबड़े के खातिर भोजन में हलाहल मिलाकर अपने देवतासमान पति यशोधर एवं अपनी सास चन्द्रमति को मारा था। उसी पाप के फल से इसका सारा शरीर कोढ़ से गल रहा है। उसी की यह भयंकर बदबूं है।

एक दासी– सच है बहना, **तीव्र पाप और तीव्र पुण्य उसी जन्म में फल देने लगते हैं।**

हे मारिदत्त, उसी समय मेरी निगाह अमृतमति की ओर गई, जो कहीं से आ रही थी। मैं उसे पहिचान न सका। उसके शरीर में कोढ़ हो गया था। सच है, पाप के उदय में शरीर कैसा बदरंग और बीभत्स हो जाता है? प्रत्यक्ष जानते हुए भी दुष्ट हृदय वाले लोग बोध–ग्रहण नहीं करते। सीख नहीं लेते। पापों से नहीं डरते। यह आश्चर्य है।

उस समय वह अमृतमति मुख्य रसोइए के पास आकर कहने लगी–

“भैंस का मांस मुझे अच्छा नहीं लगा, मेरे लिए सुअर या हिरण का मांस शीघ्र लाकर दीजिए।”

उसे सुनकर पास ही बिराजमान यशोमति ने कहा– “इस समय सुअर या हिरण का मांस मिलना मुश्किल है, इसलिए, हे रसोइए, पास ही बंधे इस बकरे की टांग को काटकर, पकाकर माँ को दीजिए। पितरों के तर्पण के लिए बकरा भी पवित्र माना गया है।

हे मारिदत्त! यशोमति का वाक्य सुनकर मुझे मेरी जिंदा मौत सामने दिख रही थी, उस समय मेरी क्या हालत हुई थी, वह मै स्वयं ही जानता था या केवलज्ञानी सर्वज्ञ, अन्य जीवों को उसका अनुमान भी नहीं हो सकता है।

अरे जीवों, देखो, मेरे तर्पण के लिए मेरी टांग काटकर मेरे निमित्त ही भोग लगाया जा रहा है।

मेरा पूरा शरीर कांपने लगा। पर कर्मफल के आगे किसकी चली, जो मेरी चलेगी। मेरा ही पुत्र मेरी टांग काटकर मेरी पत्नी को खिलाने का आदेश दे रहा है, वहाँ कौन रक्षक हो सकता है। वैसे भी न कोई किसी का रक्षक होता है, न कोई किसी का भक्षक होता है। अपने पुण्यकर्म ही रक्षक होते हैं और अपने पापकर्म ही भक्षण करवाते हैं, वहाँ किसी का क्या दोष?

रसोइए ने मेरी टांग बड़ी निर्दयता से काटी । मसालों में पकाकर अमृतमति को खिलाई।

मांसाहारी लोग थोडे–से स्वाद के लिए दूसरे मूक प्राणियों को कितना कष्ट पहुँचाते हैं? उस कष्ट को वे नहीं

जानते हैं। उस स्वाद के लोभ का अनंत कष्टरूप फल अनंत जन्मों तक भोगते हैं।

मेरी माँ चन्द्रमति का जीव बकरी के शरीर से निकल कर उज्जयिनी के पास के अमरसिंधु देश में भैंसे के शरीर में गया।

एक दिन वह भैंसा सिप्रा नदी के जल में जलक्रीड़ा कर रहा था। उसी समय राजा यशोमति की सवारी का प्रिय घोड़ा पानी पीने के लिए वहाँ गया। उस घोडे को देखकर भैंसे को पूर्वजातीय बैर से गुस्सा आया। उसने अपने नुकले सींगों से घोड़े को लहूलुहान कर दिया, जिससे वह घोड़ा तत्काल मर गया।

यशोमति के सेवकों ने यशोमति को जब यह समाचार सुनाया, तब यशोमति को बहुत गुस्सा आया। उसने आदेश किया कि इस भैंस को इस प्रकार मारो, जिससे इसके प्राण तड़फते हुए बहुत देर से निकलें। इसे जिन्दा ही पकाओ, जिससे इस भैंस को पता चले कि राजा के प्रिय घोड़े को मारने के अपराध की सजा क्या होती है?

राजा के आदेश से सेवकों ने भैंस को पकड़ा। उसके नाक में छेदकर रस्सी डाली, मुँह को कसकर बांधा। रसोइयों ने बड़े से कढाये में मसाला तैयार कर उसके पैर बांध कर उसे कढ़ाये में गरम पानी में छोड़ दिया।

गरम पानी और मसालों से भैंस के शरीर में इतनी वेदना हुई, जिससे तड़फ–तड़फ कर विलाप करती रही। गला सूखने पर भैंस ने उसी कढ़ाई के गरम पानी को थोड़ासा ही पिया था, जिससे उसका मुँह जल गया, आंतें बाहर आ गईं। जब पक रही थी, तब जहाँ तहाँ रसोइयों ने नुकीले शस्त्र से घाव कर दिये थे।

उसके जलते शरीर से प्राण निकल गए। उसके मांस को उसी के (चन्द्रमति के) नाम पर ही लोगों को खिलाया। यह भी संसार का एक तमाशा ही है कि उसी जीव के शरीर को उसी के नाम पर खिलाया जाता है। उदरपूर्ति किसी की और नाम किसी और का। यह सब अंधेर है।

हे मारिदत्त! मेरी माँ के जीव भैंस की ऐसी दशा हो रही थी। ऊधर मेरी एक टांग कट जाने से मेरी बड़ी दुर्दशा हो रही थी। मैं रो रहा था। मेरी आवाज सुनकर राजा को गुस्सा आया, उसने रसोइयों से कहा– इस बकरे को आग में ड़ालकर पकाओ। मैं आग में जिंदा पक रहा था, तड़फ रहा था। जैसे जैसे पक रहा था, वैसे वैसे काट– काट कर यशोधर की (मेरी) ही तृप्ति के नाम पर खिलाया जा रहा था। उसी में मेरे प्राण निकल गए।

मेरा जीव बकरे के शरीर से निकलकर तथा मेरी माँ का जीव भैंस के शरीर से निकल कर उज्जैनी नगर के पास मातंग जाति के भीलों की गंदी बस्ती में बहुत ही गंदगी भरे स्थान में एक मुर्गी के गर्भ में गए। अंडों में हम दोनों रहें। बाद में यथा समय दोनों अंडों से बाहर निकले। उसी दिन हमारे पिता मुर्गे की गर्दन को एक बिलाब ने ऐसे पकडा कि उस समय उसका प्राणान्त हो गया। तथा कुछ दिनों के बाद हमारी माँ को भी एक बिलाव खा गया।

बिना माँ बाप के सहारे के हम दोनों हमारे मालिक भील के आंगन में खेलते थे। चूं चूं की आवाज करते हुए हम दोनों आंगन में खेल रहे थे। हमारी मालकिन को हमारी आवाज चुभ गई तब उसने एक पत्थर फेंक कर मारा, जिससे हम दोनों की पैर की हड्डियाँ टूट गईं। इतने से

भी उसका गुस्सा शांत नहीं हुआ। उसने हम दोनों पैर बांधकर एक ढक्कन के नीचे हम दोनों को दबा दिया।

हे मारिदत्त! जब मैं यशोधर नाम का महाराजा था। तब मैंने मेरे अधीन कई छोटे राजाओं को बंदी बनाया था। उस कर्म का वह फल था। यह जीव जब दूसरे को दुःख देता है, तब यह जरा भी विचार नहीं करता कि इस कर्म का मुझे क्या फल मिलेगा? परन्तु जब उस कर्म के फल को भोगता है, तब सोचता है, मैनें जरूर ही कोई बुरा कर्म पूर्व में किया था, उसी का फल है। परन्तु उस समय सोचने से क्या होता है? **किसी ने सच कहा–बंध समय चेतो नहीं, उदय समय क्या चिंत?**

हम दोनों के पैर रस्सी से बांधे ही रखे। हम दोनों एक साथ चलते–उड़ते थे। अपने पूर्वकर्मों के फल को भोग रहे थे। पूर्व में अच्छे कर्म किये होते तो वैसे दिन क्यों देखने पड़ते? वैसे दुःख क्यों उठाने पड़ते?

काश, हर जीव भाव करने से पहले उसके बंध और फल का विचार करें तो शायद समाज, देश को सुधारने के लिए न कानून की आवश्यकता होगी, न किसी राजा की। भोगभूमि में जीवों के परिणाम इतने मंद और शांत होते हैं कि वहाँ राजा आदि प्रशासनिक व्यवस्था नहीं है, न ऐसी जगह उसकी जरूरत है। उस समय जब हम दोनों एक दूसरे से बंधे थे, तब हम बहुत पश्चाताप करते थे। दुःख में दिन बिता रहे थे।

एक दिन किसी कार्य के कारण हमारे पास से जाते हुए राजा के कोतवाल की हमारे ऊपर निगाह पड़ी। हम दोनों को देखकर पूर्व संस्कारों के कारण उसे प्रसन्नता हुई उसने हमारे मालिक को बुलाया। हम दोनों को पास लेकर

हमारे शरीर पर प्यार से हाथ फेरा। उस जीवन में हमें पहली बार अच्छा लगा। वह कोतवाल हम दोनों को अपने घर ले गया था। हमारी अच्छी तरह से देखभाल–सम्भाल करता था जिससे हम दोनों स्वस्थ हो गए।

एक दिन जब हम दोनों कोतवाल के घर के आगे आँगन में खुशी से खेल रहे थे, तब महाराज यशोमति की सवारी उधर से निकली। यशोमति की निगाह हम पर पड़ी। उसने कोतवाल को पास बुलाकर कहा–"ये दोनों मुर्गे शारीरिक–लक्षणों के आधार पर सर्वश्रेष्ठ दिखाई पड़ते हैं। इनकी अच्छी तरह से देखभाल करना और जब ये बड़े हो जायेंगे, तब इनके युद्ध को हम देखना चाहेंगे।"

कोतवाल ने सुन्दर पिंजरा लाकर हम दोनों उसमें रखा। एक दिन राजा वन में गया था। वहाँ वह कोतवाल भी हम दोनों को लेकर गया। उस वन में राजा यशोमति का सुन्दर महल था। उस महल के पास ही एक सुन्दर अशोक वन था। उस अशोक वन के बीच में एक शिला पर एक मुनिराज विराजमान थे, उनको देखकर कोतवाल को बहुत बुरा लगा– उसे मुनिराज पर क्रोध आ रहा था। उसे लग रहा था। इस मुनि ने यह स्थान अपवित्र कर दिया है, महा अपशगुन किया है। इसलिए इसे मैं यहाँ से भगा दूँ तो अच्छा रहेगा। परन्तु भगाऊँ कैसे? किस बहाने से? उसने मन में सोचा–

"मैं इससे ऐसा अटपटा प्रश्न करूँगा, जिससे यह उसका उत्तर नहीं दे पायेगा, इसतरह उसे मूर्ख बनाकर इसे भगा दूँगा। इस प्रकार विचार कर हमारे पिंजरे को तो यशोमति के महल के बाहरी आंगन के एक पेड की ड़ाली पर लटकाकर मुनिराज के पास गया। उसने मुनिराज को

दण्डवत् नमस्कार किया। मुनिराज ने ध्यान के बाद आँखे खोली। कोतवाल को देखकर वे ऋद्धिधारी मुनिराज समझ गए कि–एस समय यह कोतवाल दुष्टभावों से भरा हुआ है। मुझे यहाँ से भगाना चाहता है। तो भी समभावी मुनिराज ने उसे 'धर्मवृद्धि हो' ऐसा आशीर्वाद दिया, आशीर्वाद के इन शब्दों को सुनकर उनमें धर्म शब्द को सुनकर कोतवाल ने कहा –

भो ऋषिवर! आपने धर्मवृद्धि का आशीर्वाद दिया, वह मैंने स्वीकार किया, परन्तु वीरों के लिए धनुष की धर्म है, धनुष की ड़ोरी ही गुण है तथा शत्रु के नाश के लिए छोडा गया बाण ही मोक्ष है। इसके अलावा न कोई धर्म है, न कोई गुण है, न कोई मोक्ष है। (इन्द्रियों के विषयों का भोग ही आनन्द है।)

आपके पास इनमें से कुछ भी नहीं है, इसलिए आपके पास न धर्म है, न गुण है, न मोक्ष, न आनन्द है।

जंगल में रहते हों, शरीर पर धागा तक नहीं , न रात को सोते हों, पता नहीं आँख बन्द करके किसका ध्यान करते हों? आपके इन कृत्यों से हम जैसे मनुष्यों को भ्रम होता है। इसलिए अच्छा हो कि आप इस आड़म्बर को छोड़कर आराम से भोग भोगें। तब मुनिवर ने कोटपाल से कहा–

हे बन्धु! आप ने कहा – धनुष ही वीरों का धर्म है, परंतु विचार करो, धनुष तो हिंसा का साधन। दूसरों को दुःख देना ही हिंसा है। हिंसा अर्थात् दूसरों को दुःख देने में धर्म कहाँ? धर्म दुःख का कारण नहीं हो सकता।

मोक्ष के बाद तो जन्म–मरण नहीं होता है। शत्रु का नाश करने वाले को मोक्ष मिलता तो सैनिक जन्म मरण से

मुक्त क्यों नहीं होते? इन्द्रियों के भोग में ही आनन्द होता तो राजा महाराजा राजपद व वैभव छोड़कर संन्यास ग्रहण कर वन में क्यों रहते? किसी ने सच ही लिखा है

न हि भोगो भाग्यं, भाग्यं भोगेषु वैराग्यम्।

अर्थः– भोगों का मिलना भाग्य नहीं है, भोगों से वैराग्य होना ही सौभाग्य की बात है।

भोग तो रोग की निशानी है। रोग में आनन्द कहाँ? जैसे रोगरहित होने में आनन्द है, वैसे भोगरहित होने में ही आनन्द है।

आपने कहा मेरे पास भोगादिक सामग्री नहीं है, इसलिए मैं दुःखी हूँ।

परन्तु मैं कहता हूँ कि मेरे पास भोगादिक सामग्री नहीं है, इसलिए मैं सुखी हूँ। यह सामग्री जिनके पास नहीं होती, वे ही सुखी होते हैं, जिनके पास सामग्री होती है, वे दुखी होते हैं।

मैं वस्त्रादि से रहित होने के साथ राग–व्देष रहित हूँ, इसलिए सुखी हूँ। जिनके पास वस्त्रादि होते हैं, वे राग–द्वेष सहित होने से दुःखी होते हैं। क्योंकि रागव्देषों से रहित होने से सुख होता है। राग–व्देष होने पर तो दुःख ही होता है। मैं आँख बन्द करके अपने चैतन्यस्वरूप का ध्यान करता हूँ।

वह चैतन्य–

ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दुजो भवों।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दुसो चेव।।
नहिं अप्रमत्त प्रमत्त नहिं जो एक ज्ञायक भाव है।
इस रीत शुद्ध कहाय अरू जो ज्ञात वो तो वोहि है।

इसी का चिंतन करता हूँ या बारह भावनाओं का चिंतन करता हूँ।

कोतवाल–परन्तु हे मुनिवर शरीर से भिन्न कुछ दिखाई नहीं देता! आप किस चैतन्य की बात करते हो?

मुनिवर–हे भाई, जिसके निकल जाने पर शरीर क्रियाहीन, मरा कहने में आता है । वही जीव है, ज्ञान उसका लक्षण है, वह अरूपी चैतन्य है। इन्द्रियों से दिखाई नहीं देता है, क्योंकि इन्द्रियों से जड़ वस्तुएं दिखाई देती हैं। वह चैतन्य चेतना रूप जीव शरीर और कर्मों से भिन्न है। यदि अन्तर्दृष्टि से अवलोकन करोगे तो दिखाई देगा।

कोतवाल– हे मुने! आत्मा का ध्यान करना है तो करो परंतु घर–बार क्यों छोड़ा? यह कार्य घर में भी हो सकता था, यहाँ रोटी–पानी का ठिकाना नहीं, सर्दी गर्मी, बारिश से बचने का उपाय नहीं – ऐसी असुविधाओं में ध्यान भी तो सही तरीके से नहीं होता होगा?

मुनिवर – हे बन्धु, घर में ध्यान तो लगता है, परन्तु विशेष ध्यान नहीं लगता है। घर में काम कोध ज्यादा होते हैं और ध्यान कम लगता है। वन में ध्यान ज्यादा और कषायें कोध कामादि कम होते हैं। इसलिए घर–बार छोड़ वन का आश्रय लिया है। आसाक्ति हो तो घर में रहें, परन्तु जिसकी आसक्ति मिट गई, वह घर में क्यों रहें? अनेक गरीब मनुष्यों को घर में भरपेट भोजन नहीं मिलता, इसलिए रोटी –पानी आदि का मिलना, नहीं मिलना, पुण्य–पाप के आधीन समझो वन या घर के आधीन नहीं। जिनको शरीर से मोह होता है, उनको सर्दी, गर्मी बारिश से बचने के उपाय चाहिए, परन्तु मेरा तो शरीर से मोह नष्ट हुआ है, इसलिए मुझे सर्दी, गर्मी, बारिश से कोई फर्क नहीं पड़ता।

मैं साम्यजल से क्रोधाग्नि को बुझाता हूँ, नम्रता से मान को मिटाता हूँ, सरलता से कपट को जीतता हूँ, संतोष से लोभ का तिरस्कार करता हूँ, तप से काममद का दमन करता हूँ।

स्त्री के अवलोकन में अंधा, संगीत सुनने में बहरा हूँ, राग रंग के स्थानों में जाने में पंगु हूँ, बुरी बातें, निंदा, चुगली करने में गूंगा हूँ। अन्य सभी इच्छाएं त्याग कर एक मात्र मोक्ष की अभिलाषा से संन्यासी बना हूँ। आहार लेता हूँ, परन्तु आहार में गृद्धता नहीं करता हूँ।

कोतवाल— हे मुने! आपने कही सब बातें सही हैं, परन्तु देह से आत्मा को भिन्न कहते हों, वह समझ में नहीं आया। जैसे फूल से गंध अलग नहीं होती, उसी प्रकार शरीर से आत्मा भिन्न नहीं हो सकती?

मुनिवर— हे भव्य, शरीर से आत्मा भिन्न है— यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है। जैसे चम्पा के फूल को तेल में ड़ालने पर उसकी गंध तेल में चली जाती है, फूल फिर भी बना रहता है। धीरे—धीरे फूल की गंध समाप्त होने पर भी फूल बना रहता है, उसी प्रकार शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा बनी रहती है।

कोतवाल— परन्तु आत्मा को आते—जाते किसी ने देखा नहीं?

मुनिवर— अमूर्तिक आत्मा को आँखों से कैसे देख पाओगे? इन्द्रियों से इन्द्रियों के विषयभूत जड़ पदार्थ से दिखाई देते हैं, परन्तु आत्मा नहीं दिख सकता , क्योंकि "आत्मा" अतीन्द्रिय वस्तु है। लेकिन आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में आता अवश्य है। इतने पर भी विश्वास न हो तो तुम पिंजरे में कैद करके मुर्गे के जिन बच्चों को लाये

हो, उन्हीं को देख लो, हिंसा के कारण से अनेक अलग–अलग शरीरों को धारण करके उन्होंने अनेक कष्ट पाये हैं, पा रहे हैं।

इनमें एक चूजा (मुर्गे का बच्चा) राजा यशोमति के पिता राजा यशोधर का जीव है और दूसरा जीव उससमय के उस राजा यशोधर की माता चन्द्रमति का जीव है। इन्होंने अपनी–अपनी छोटी–छोटी गलतियों से ऐसे विकराल दुःख पाये हैं, जो सुनने में भी दुःखदायक हैं। अनादिकाल से असावधान रहनेवाला यह जीव असावधानी से छोटे–छोटे कार्यों से महापाप का संग्रह करता रहता है।

राजा यशोधर और राजमाता चन्द्रमति के जीवों को उसके पास विद्यमान चुजों के शरीरों में जानकर कोतवाल के मन से मुनि के प्रति जो द्वेष का भाव था, वह मिट गया और उसे उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। तब उसने कहा–

हे महामुने! इन मुर्गे के जीवों के पूर्व भवों (जीवनों) का वर्णन कर मुझे कृतार्थ कीजिए। क्योंकि मुझे इनके प्रति अपने–आप लगाव हुआ है, अतः मेरी उत्सुकता को शांत कीजिए।

इसके बाद मुनिवर ने यशोधर राजा से लेकर मोर, नेवला, मगरमच्छ, बकरा, पुनः बकरा, मुर्गे तक के मेरे जन्मों का विस्तार से वर्णन किया। मेरी माँ के चन्द्रमति से लेकर कुत्ता, सांप, संशुभार जाति का जलचर जीव, बकरी, भैंस, मुर्गे तक के जन्मों का विस्तार से वर्णन किया। आगे बताया कि यशोधर ने आटे के मुर्गे की बलि देकर हिंसा के भाव से और उनकी माँ चन्द्रमति ने कुदेवों को भजकर, बलि

देकर हिंसा के पापभाव का अनुमोदना करके हिंसा के पाप का संचय करके दुर्गतियों में दुःख पाये हैं, पा रहे हैं।

हमारी जीवन की गाथाएं सुनकर संसार से उदास हुए कोतवाल ने समस्त कुलधर्म का त्याग कर श्रावक के धर्म व व्रतों को धारण किया। मुनिराज को पुनः भावसहित नमस्कार किया। उससमय हमें जातिस्मरण ज्ञान हो गया था, हम दोनों ने भी मुनिराज के द्वारा बताये हमारे पूर्व जीवनों को सुनकर अपार खुशी, संतोष का अनुभव किया। हम दोनों खुशी से नाचने, कूदने व तरह–तरह की आवाजें कर अपना आनंद प्रगट करने लगे थे।

हम इतनी जोर से आवाजें कर नाचने लगे थे कि हमारी आवाजें पास के महल में अपनी पत्नी कुसुमावली के साथ हँसी–मज़ाक में व्यस्त राजा यशोमति के कानों में पहुँचीं। उन आवाजों से यशोमति के आनन्द में खलल पड़ी। उसने पत्नी कुसुमावली से कहा– "हे प्रिये! देख, आज मैं तुम्हें शब्दवेधी बाण का कमाल दिखता हूँ।" यह कहकर उसने शब्दवेधी बाण चलाया। उस बाण के लगने से हम दोनों के प्राण तत्काल छूट गए।

हम दोनों के जीव यशोमति की पत्नी कुसुमावली के ही गर्भ में आये।

मैं अपने ही बेटे का बेटा बना और मेरी माँ चन्द्रमति का जीव अपने पोते की बेटी बनी है। हम दोनों माँ–बेटे के जीव नौ माह के बाद सगे जुड़वा भाई–बहन बने हैं। मेरा नाम अभयरूचि या अभयकुमार था और मेरी बहन का नाम अभयमति या अभयकुमारी है।

हम दोनों अतिशय सुन्दर थे। इसलिए कुटुम्बीजनों के प्रिय बने। हम दोनों लाड़ प्यार से बड़े होने लगे। हम

बड़े हो गए तब एक दिन यशोमति पाँच सौ शिकारी कुत्तों को साथ लेकर शिकार के लिए गए थे। उन्हें वन में एक शिला पर विराजमान **सुदत्त** नाम के मुनिराज दिखाई दिए। उन्हें मुनिराज शिकार के कार्य में अपशगुन जैसे दिखाई दिए। उसने सोचा यह अपशगुन कहाँ से आया? यह सोच उसने पाँच सौ शिकारी कुत्ते उन पर छोड़े। वे शिकारी कुत्ते मुनिराज के चरणों के पास नम्र भक्त की तरह बैठ गए।

तब यशोमति राजा स्वयं तलवार लेकर मुनिराज को मारने के लिए गया। उस समय कल्याणमित्र नाम का राजश्रेष्ठी जो मुनिराज के पास बैठा था। उसने हाथ जोड़कर राजा से कहा–

हे राजन्! आप मुनिहिंसा करेंगे तो आप में और हिंसक भील में क्या अंतर रहेगा? इनको मारने की बजाय इनको नमस्कार करना चाहिए।

कल्याणमित्र के वचनों को सुनकर गुस्से से लाल हुए यशोमति ने कल्याणमित्र से कहा–

जो नग्न है, स्नान रहित है, अमंगलरूप है, उसे नमस्कार करने के लिए कह रहे हो, लगता है तुम्हें मौत बुला रही है। इस साधु को तो मैं मारूंगा ही। कल्याणमित्र–हे राजन् नग्नता और स्नान नहीं करना ही कारण हो तो सभी पशु, पक्षी मारने योग्य ठहरेंगे। अनेकों वनवासी, भील आदि भी नग्न तथा स्नानरहित और अमंगल होते हैं, उन्हे भी मारिए।

शरीर स्वयं अमंगल रूप है, उसके साथ जो भी वस्तु आती है, वह स्वयं मलिन होती है, अतः आपका, हमारा शरीर भी अमंगलरूप है। वास्तव में हमारी हिंसादि की दूषित भावनाएं ही अमंगलरूप होती हैं, वस्तुएं नहीं।

हे राजन्! आप सब के रक्षक हैं, पालक हैं, ये मुनि रागद्वेष रहित संसार से उदास हैं, इन्हे मत मारिए। इनका शरीर अमंगल, अपवित्र नहीं है, इनका शरीर तप से पवित्र है, इनके शरीर के स्पर्श से बड़ी–बड़ी व्याधियाँ अपने आप ठीक हो जाती हैं। ये ऋद्धिधारी सन्त हैं। इनको सर्प नहीं काटते, शेर भी इनके आगे गाय की तरह बैठते हैं। देखों, ये शिकारी कुत्ते भी इनके सामने शांति से बैठे हैं। ये अपने बल से तो तीन लोक को पलट सकते हैं, परन्तु इनको ऐसा भाव नहीं आता। शत्रु के प्रति भी शांतभाव रखते हैं। ये कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं। ये कलिंग देश के सुदत्त नाम के राजा थे। एक कुसुमाल नाम के चोर के बंधन और फांसी की शिक्षा के प्रसंग से वैराग्य को प्राप्त होकर मुनि बने हैं। यशोमति कल्याणमित्र नाम के सेठ के वचनों से प्रभावित हुआ। उसने मुनिराज को नमस्कार किया। उनके चरणों के पास बैठ गया।

सुदत्त आचार्य ने यशोमति को धर्मवृद्धि का आशीर्वाद दिया तथा उपदेश रूप अमृतवचन कहे। उन्हें सुनकर यशोमति ने विचार किया–अहो, ये मुनिराज तो सचमुच संसार के कष्ट दूर करनेवाले अतिशय मंगलरूप हैं। मैंने अज्ञान से इनको अपशगुन समझकर इन्हें मारने का बहुत बुरा भाव किया था। अयोग्य विचार किया था। इसका प्रायश्चित्त यही है कि मैं अपना मस्तक काटकर इनके चरणों पर चढाऊँ।

मुनिवर सुदत्त राजा यशोमति के मन की बात को समझ गए। उन्होंने यशोमति राजा से कहा–

हे राजन्! अपनी निंदा, गर्हा से प्रायश्चित होता है, मस्तक काटने से प्रायश्चित्त नहीं होता, मस्तक काटना तो

आत्मघात है। आत्मघात महापाप होता है, अतः किसी को कभी भी आत्मघात, आत्महत्या कभी नहीं करनी चाहिए।

यशोमति राजा को आश्चर्य हुआ कि मुनिराज ने मेरे मन की बात कैसे जानी? यशोमति ने मुनिराज से पूछ ही लिया–

हे मुनिवर, आप त्रिकालज्ञ सर्वदर्शी हैं। कृपा कर बताइए कि मेरे पिता यशोधर व मेरी दादी चन्द्रमति मृत्यु को प्राप्त होकर कहाँ उत्पन्न हुए हैं? मुझे मेरे पिता एवं दादी बहुत याद आते है। उनके प्रति मेरे मन में बहुत प्रेम है। इसलिए मुझे उनके जन्मों के बारे में कृपा करके बता दीजिए।

आचार्य सुदत्त ने कहा–हे राजन्! आपकी जिज्ञासा है तो सुनिए– आपके पिताजी यशोधर के पिता अर्थात् आपके दादाजी राजा यशोर्ध मुनि बनकर तपश्चरण कर स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं। आपके पिताजी राजा यशोधर ज़हर से मरण को प्राप्त होकर मोर, फिर नेवला, फिर मगरमच्छ, फिर बकरा, फिर पु:न बकरा मुर्गे के शरीर में रहे।

आपकी दादी चन्द्रमति भी ज़हर से मरण को प्राप्त होकर कुत्ता, सांप, संशुमार, बकरी, भैस, मुर्गी के शरीर में रही है। इस समय आपके पिताजी का जीव आपके ही घर में आपका अभयरूचि या अभयकुमार नाम का पुत्र बनकर विराजमान है। और आपकी दादीजी का जीव भी आपके ही घर में आपकी अभयमति या अभयकुमारी नाम की पुत्री बनकर विराजमान है।

सुदत्त मुनिराज ने हमारी जीवन गाथाएं हमें विस्तार से बतायी थीं। आगे कहा– तुम्हारी माँ अमृतमति मरण करके छठें नरक गई है। इन जीवों की कहानियाँ विस्तार

से सुनने पर यशोमति को हिंसारूप कुधर्म से वैराग्य हो गया। यशोमति ने सुदत्ताचार्य से कहा–

हे दयानिधे! करूणासागर! महामुने! मैं हिंसारूप धर्म का आचरण कभी भी नहीं करूँगा। क्योंकि एक बार के आटे के मुर्गे की बलि देने का इतना बड़ा दुःखदायक फल है, तो प्रत्यक्ष जीवहिंसा कर बलि देने वालों की , मांस भक्षण करनेवालों की कितनी दुर्गति होती होगी? यह सोचकर रोमात्र्च हो आता है।

संसार से ड़र लगता है। संसार भयावह लगता है। संसार असार दिखता है। संसार से वैराग्य को प्राप्त हो चुका हूँ। इसलिए

हे महामुने! मैं भी दीक्षा लेना चाहता हूँ।

राजा यशोमति के दीक्षा लेने के समाचार चारों ओर फैल गए। जब राजमहल में रानियों को यह समाचार मिले, तब उन्होंने वन की राह पकड़ी। कुसुमावली के साथ सभी रानियाँ यशोमति के पास पहुँची । तभी हमारे पास भी ये समाचार पहुँचे थे तो हम भी वन में गए। रानियों ने यशोमति को बहुत समझाया कि वे अभी दीक्षा नहीं लें, लेकिन रानियों की बात का यशोमति के विरागी मन पर असर नहीं पड़ा। हम दोनों ने भी सुदत्ताचार्य से अपने पूर्व भवों की कहानी सुनी तो हमें भी संसार से वैराग्य हो गया। परन्तु कल्याणमित्र सेठ के कहने से हम ने दीक्षाएं नहीं ले पाये।

राजा यशोमति ने अपनी राजधानी उज्जयिनी में आकर मेरा राज्याभिषेक किया और वन में जाकर दीक्षा ली। उनके साथ रानियों ने भी आर्यिका दीक्षाएं लीं।

मैं राजा बना था, परन्तु मेरा मन संसार से उदास था। इसलिए मैंने बहुत सोच–विचार करके राज्य अपनी दूसरी माता के पुत्र को देकर मैं भी वन में गया।मेरे साथ मेरी बहन भी थी। वन में मुनिराज से दीक्षा की मांग की। मुनिराज ने हम दोनों से कहा–

अभी तुम दोनों बालक हों। तुम्हारे शरीर कमल के फूल की तरह कोमल हैं। इसलिए तुम दोनों क्षुल्लक–क्षुल्लिका के व्रतों को धारण करो। व्रत वे ही लेने चाहिए, जो आसानी से निभ सके। उनके आदेश से हम दोनों ने उसी समय क्षुल्लक, क्षुल्लिका के व्रत धारण किए। उस समय मुनिराज ने हमें उपदेश दिया था कि"पाप इस जीव का शत्रु है और धर्म ही इस जीव का मित्र है। ऐसा विचार कर आत्मानुभूति के लक्ष्य से जो शास्त्र को पढ़ता है, वही श्रेष्ठ ज्ञाता है। जिसे रत्नत्रय धन मिला, उसे ही सच्चा धनवान समझो। पुण्य में दगा नहीं होता, पाप में कोई सगा नहीं होता। धनादिक वैभव पुण्य से मिलते हैं, नश्वर हैं कमाने से नहीं मिलते, क्योंकि कमाने का भाव पापभाव है, पापभाव से धनादि नहीं मिलते। संसार में जो कुछ उत्पन्न हुआ है, प्राप्त हुआ है, वह सब अवश्य ही नष्ट होता है।

जन्म, मरण से सहित है, यौवन, वृद्धावस्था से सहित है, लक्ष्मी नाश से सहित हैं, अतः सब कुछ क्षणभंगुर है। इसलिए गृहस्थों को धनादि के प्राप्त होने पर खुशी तथा बीमारी आदि के होने पर दुःखी नहीं होना चाहिए। क्षणिक जानकर धैर्य धारण करना चाहिए। और भी संसारनाशक उपदेश एवं दीक्षा देकर हमें धर्म में दृढ़ किया।

हे मारिदत्त! हमें दीक्षा लिये हुए कुछ ही दिन हुए हैं। आचार्य श्री सुदत्त के निर्देशन में धर्म का पालन कर रहे

हैं। उनका संघ इस समय आपकी राजधानी के पास के उद्यान में आया हुआ है, आज चतुर्दशी तिथि है। संघ के सभी त्यागियों ने उपवास धारण किया हुआ है। हम दोनों ने भी उपवास की मांग की थी, परन्तु आचार्य के आदेश से हम दोनों आहार के लिए शहर की ओर आ रहे थे। आपके सेवकों ने हमें देखा, बलि योग्य जोडा जानकर हमें यहाँ लेकर लाये हैं।

इसके बाद जैसा आपको अच्छा लगे वैसा कीजिए। तब मारिदत्त राजा ने कहा–

अहो, क्षुल्लक महाराज, क्षुल्लिकाजी! आप दोनों पवित्र हों, हम जैसे पापियों को तारनेवाले हों, आपने हमारा निवेदन स्वीकार करके जो अपना जीवन परिचय सुनाया, उससे हम उपकृत कृतार्थ हुए हैं। आप हमारी कुसुमावली नाम की बहन के पुत्र–पुत्री हों, अतः आप हमारे भांजे और भांजी ही हों। मैं अनजाने में कितने बड़े पाप को कर रहा था? यदि आपकी बिना सोचे समझे बलि दे देता।

आपके चरित्र को सुनकर हमें संसार से वैराग्य हुआ है। हम संसार में नहीं रहेंगे। हम आज से बलि जैसी हिंसा का त्याग करते हैं। उस समय सेवकों को बुलाकर कहा–वन को सुशोभित करो। उसी समय चण्डमारी देवी जो एक व्यंतर देवी थी, उसने कहा मैं वन को सुशोभित करना चाहती हूँ।

मारिदत्त– मातुश्री! जैसी आपकी इच्छा हो, वह कीजिए। उसके बाद देवी चण्डमारी ने ऋध्दियों के व्दारा वन को सजाया। वहाँ उपस्थित सभी लोग उस वन में गए। वहाँ एक ऊंचे सिंहासन पर क्षुल्लक अभयरूचि को विराजमान किया। उन सबने अत्यंत सुमधुर शब्दों से उनकी

स्तुति की। स्तुति, वंदना आदि के बाद चण्डमारी देवी ने क्षुल्लकजी से पूछा –

हे स्वामिन्! आपको केवल आटे के मुर्गे की बलि से इतने कष्ट उठाने पडे हैं। मैं तो प्रत्यक्ष ही कितने ही जीवों की हिंसा करवाती रहती हूँ , मैंने कितने बड़े पाप बांधे होंगे। मैं उनसे कैसे मुक्त होऊंगी? हे नाथ, उपाय बताकर मेरी रक्षा कीजिए। मेरा उद्धार कीजिए।

क्षुल्लक–हे देवि, हे भगिनि! देवगति में संयम, तप नहीं होते हैं। देवगति में न अणुव्रत होते हैं, न ही महाव्रत होते हैं। हाँ, मोक्ष का मूल सम्यग्दर्शन हो सकता है। सम्यग्दर्शन ही जीव सच्चा रक्षक तथा उद्धारक है, इसलिए तत्त्वविचार के द्वारा आप सम्यग्दर्शन धारण कीजिए।

यह सुनकर चण्डमारी देवी ने सम्यग्दर्शन का स्वरूप पूछा और तत्त्व को धारण किया। उसने प्रतिज्ञा की कि न मैं हिंसा करूँगी, न करने दूंगी। यह कहकर देवी अन्तर्धान हो गई।

मारिदत्त राजा ने क्षुल्लकजी से कहा – "संसार के दुःखों से भय लग रहा है, इसलिए मुझे मुनिदीक्षा देकर उपकृत कीजिए।"

क्षुल्लक – हे राजन्! मैं स्वयं क्षुल्लक हूँ, अतः मैं मुनिदीक्षा देने का अधिकारी नहीं हूँ। इसका अधिकार मात्र आचार्यश्री के पास हैं, वे पास ही है, मैं आप सबको उनके पास ले चलता हूँ, वे ही आपको दीक्षा देंगे । यह कहकर क्षुल्लक आदि सभी आचार्य सुदत्त के पास गए, वहाँ उन्होंने तपस्वियों को नमस्कार किये। वे सब आचार्य के सामने बैठ गए। वहाँ मारिदत्त ने सुदत्ताचार्य जी से पूछा–

हे महामुने! किस कारण से हम सब इस तरह से मिले हैं? हे यते! मैं अपने पूर्वजन्म के बारे में जानना चाहता हूँ। इसके बाद उन करूणानिधि मुनिराज सुदत्ताचार्य ने विस्तार से बताया–

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में गंधर्व नाम का एक देश है। इस देश में गंधर्वनगर है, उस नगर में वैदर्भ नाम का राजा था। उस राजा की विंध्यश्री नाम की पटरानी थी। उनके गंधर्वसेन नाम का पुत्र तथा गंधश्री नाम की एक पुत्री थी।

इस राजा के राम नाम का एक मंत्री था। इस मंत्री के चन्द्रलेखा नाम की पत्नी थी, जितशत्रु तथा भीम नाम के दो बेटे थे।

गंधश्री पुत्री जब बड़ी हो गई, तब राजा वैदर्भ को उसके शादी की चिंता हुई। पत्नी, मंत्री आदि से चर्चा के बाद गंधश्री के वर के लिए स्वयंवर रचा गया। उस स्वयंवर में गंधश्री ने राम मंत्री के बड़े पुत्र जितशत्रु के गले में वरमाला ड़ाली। दोनों का विवाह हो गया।

एक दिन राजा वैदर्भ शिकार के लिए वन में गए थे। वहाँ उन्होंने चरते हुए हिरणों का एक जोड़ा देखा। राजा ने बाण चलाया, उससे हिरणी घायल होकर धरती पर गिरी। हिरणी को घायल देख हिरण बेभान होकर इधर–उधर दौड़ा। दौड़ता–दौड़ता पुनः राजा के सामने आ गया। उस समय वह हिरण अपनी पत्नी के विरह में इतना व्याकुल हो गया था कि उसे अपने प्राण जाने का भी भय नहीं रहा। अपनी आँखों से अश्रु बहाता वह हिरण मृतक हिरणी की ओर अपलक देखता रहा।

उस समय उस दृश्य को देखकर राजा वैदर्भ ने सोचा– मैं इन्द्रियों का दास बनकर अब तक न जाने कितने बेकसूर प्राणियों को मारता रहा। मैंने कितने ही प्राणियों के घर उजाड़े होंगे। कितनी ही माँओं को बच्चों से और कितने ही बच्चों को उनकी माँओं से अलग किया, उनका हिसाब नहीं है। मनोरंजन के लिए किसी का घर उजाड़ना कितना बड़ा अपराध है? इन पापों का प्रायश्चित्त कैसे होगा?

यह सोचते–सोचते उसे संसार से वैराग्य हो गया और दीक्षा को ही प्रायश्चित्त का एकमात्र उपाय जानकर उसने दीक्षा ली।

रानी विंध्यश्री ने भी आर्यिका दीक्षा ली। वैदर्भ राजा के मुनि बनने के बाद गंधर्वसेन राजा बना।

एक दिन राजा गंधर्वसेन दल बल ठाट– बाट के साथ मुनि वैदर्भ के दर्शन के लिए गया था। उसके वैभव को देखकर मुनि वैदर्भ का मन विचलित हो गया। उसने जिस राज्य और वैभव को छोड़ा। उसी विचार उसके मन में आये। उसने सोचा कि व्रत के प्रभाव से इसी प्रकार की ऋद्धि का राजा बनूँ।

अरे, देखो तो जिस व्रत से संसार का अभाव होता हो, उसी व्रत में उसने संसार ही चाहा। उसने तपोरत्न को कौड़ियों के लिए बेच दिया।

मिथ्यात्व से दूषित होकर मरण करके तप के प्रभाव से उज्जयिनी नगरी में वही वैदर्भ राजा का जीव यशोर्ध नामक राजपुत्र के रूप में जन्मा। उसने राज्य किया। एक दिन सिर के सफेद बाल को देखकर वैराग्य को प्राप्त

होकर दीक्षा लेकर समाधिमरण कर छठे ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में देव बना।

विंध्यश्री जो आर्यिका बनी थी। मिथ्या वासना पूर्वक तप करती हुई मरण को प्राप्त होकर अजितांग राजा के घर चन्द्रमति नाम की राजपुत्री बनी। उसका यशोर्ध राजा के साथ विवाह हुआ था। परन्तु पूर्व की मिथ्यावासनाओं के कारण बलि देना, कुदेवों की भक्ति करना आदि कुप्रथाओं में लीन रहकर मरी। श्वान आदि बनकर इस समय अभयमति बनी।

महाराज वैदर्भ की पुत्री गन्धश्री जिसका विवाह जितशत्रु नाम के राम मंत्री के बड़े पुत्र के साथ हुआ था। उसने अपने देवर भीम के साथ सम्बन्ध बनाये थे। उससे वह चोरी–छिपे मिलती थी। एक बार जितशत्रु ने गंधश्री और भीम को एक साथ देखा। उसे संसार से वैराग्य हुआ। मुनिदीक्षा लेकर तप किया। मरण कर वह चन्द्रमती के गर्भ में आया। यशोधर नाम का राजकुमार बना और यशोर्ध के दीक्षा लेने के बाद राजा बना।

जितशत्रु की माँ चन्द्रलेखा ने और राम नाम के मंत्री ने अपनी पुत्रवधु गंधश्री और छोटे पुत्र भीम के व्यभिचार के बारे में सुना। तब उन दोनों ने दीक्षाएं लीं। मरण कर वे विजयार्ध पर्वत पर विद्याधर और विद्याधरनी बने हैं।

गंधर्वसेन ने भी जब बहन के कुत्सित कर्म के बारे में सुना, तब उसने दीक्षा लेकर तप किया। निदान सहित मरण करके तू मारिदत्त के रूप में जन्मा है।

गंधश्री बड़े कष्ट पूर्वक मरण करके विमल वाहन राजा के घर अमृतमति नाम की राजकुमारी बनी थी।

राजकुमार यशोधर के साथ उसका विवाह हुआ था। पूर्वसंस्कारों के कारण यशोधर उसे पूर्ववत् बहुत चाहता था।

राममंत्री का छोटा बेटा भीम कष्टपूर्वक मरण कर यशोधर के राज्य में कुबड़ा बनकर जन्मा। राजा के घर घोड़े आदि की सेवा का कार्य करने लगा।

देखिए पुण्य–पाप के खेल। एक भाई धर्ममार्ग पर था तो राजा बना। दूसरा भाई अधर्म के रास्ते पर रहने से उसीका नौकर और शरीर से कुबड़ा बना।

वहाँ भी अमृतमति और कुबड़े का पुनः सम्पर्क हुआ। पूर्व संस्कारों से दोनों फिर व्यभिचार में डूब गये। उनके व्यभिचार को यशोधर ने देख दीक्षा का मानस बनाया। अमृतमति के द्वारा उसे जहर देकर मारा गया। वह यशोधर मोर आदि पर्यायों को धारण कर अभयरूचि बना है। अमृतमति मरकर नरक गई है।

राममंत्री का जीव, विजयार्ध पर्वत पर विद्याधर बना था, मरण कर यशोमति नाम का यशोधर का बेटा बना। पहले वह राम नाम का पिता था और यशोधर का जीव उसका जितशत्रु नाम का बेटा था। अब इस जीवन में जितशत्रु का जीव यशोधर उसका पिता बना था और उसका जीव इससमय यशोमति नाम से उसका बेटा बना है। संसार में रिश्ते बदलते देर नहीं लगती।

जितशत्रु की माँ, जो विजयार्ध पर्वत पर विद्याधरनी बनी थी, वह समाधिमरण कर इससमय यशोधर की पत्नी कुसुमावली बनी है।

हे राजन् मारिदत्त एक और कथा आपसे कहता हूँ ध्यान से सुनिए–

मिथिलानगरी में जिनदत्त नाम के एक बड़े सेठ थे। उनके घर गाय थी। यशोधर राजा के प्रिय घोड़े का जीव उस गाय के बछड़े के रूप में जन्मा। वह बैल बड़ा होकर आयु पूरी कर मरण करने वाला था, उससमय उस जिनदत्त सेठ ने उसके कानों में णमोकार मंत्र सुनाया था। वह बैल मरण कर तुम्हारी रूक्मिणी नाम की रानी के गर्भ से रिपुमर्दन नाम का पुत्र बना है।

हे राजन्! तुम्हारे उस रिपुमर्दन नाम के पुत्र ने दीक्षा ली। परन्तु मिथ्यावासनाओं को पूर्णतः मिटाने में असमर्थ वह एक दिन तुम्हारी कुलदेवी के मंदिर के पास आया। उसने सोचा कि

तप के प्रभाव से मैं देवी जैसे वैभव को प्राप्त करूँ। उसने भी वैदर्भ मुनि की तरह गलती की। जिससे मोक्ष प्राप्त हो सकता था, उस तप से उसने संसार का ही वैभव चाहा। वह मरण कर मिथ्यावासना के प्रभाव से चण्डमारी देवी बना।

हे राजन्! तुम्हारी माँ का जीव अनेक पर्यायों को धारण कर इस समय भैरव नाम का जोगी बना है। इससमय वह दया से भरा हुआ है, समाधिमरण कर यह भैरव जोगी तीसरे स्वर्ग में देव बनेगा। भैरवानन्द ने दीक्षा की योजना की थी, परन्तु छह उगलियाँ होने से उसे दीक्षा नहीं दी जायेगी। परन्तु अणुवव्र धारण कर वह 22 दिन तक समाधिमरण कर तीसरे स्वर्ग में देव बनेगा।

अन्त में हे राजन्! अब हमारी कहानी सुनो– मैं उज्जयिनी में यशोवर्धन नाम का राजा था। दया दानादि में तत्पर था। मरण कर कलिंग देश के भगदत्त नाम के राजा का सुदत्त नाम का पुत्र बना एक दिन मेरे पिता भगदत्त ने

संसार से उदास होकर दीक्षा ली उन्होंने मुझे राजा बनाया था मैं राज्य करने लगा था।

एक दिन राजदरबार में कोतवाल एक चोर को पकड़कर लाया। कोतवाल ने मुझ से कहा–

महाराज! यह चोरी करता है, बड़ी मुश्किल से पकड़ में आया है। इसे आप उचित दण्ड दीजिए।

मैंने मंत्रियों से उसके दण्ड के बारे में पूछा–एक दयावान मंत्री ने कहा–इसके हाथ–पैर काटने के बाद इसे फांसी पर चढाया जाय।

दूसरे मंत्री ने कहा– महाराज! इसके लिए यही दण्ड़ उचित है, परन्तु ऐसा करने पर उस पाप के आप भी भागीदार बनेंगे।

तीसरे मंत्री ने कहा– पाप से बचने के लिए इसे दण्ड़ नहीं देंगे तो राज्य में अन्याय बढेंगे। उस पाप के आप भी भागीदार होंगे।

मैंने मन में सोचा– इसे दण्ड़ दूँ तब भी पाप लगेगा, नहीं दूँ तब भी पाप लगेगा। यह कैसी विचित्रता है राजनीति की? कुछ करो तो पाप और नहीं करो तो पाप। दण्ड़ दो तो पाप, नहीं दो तो पाप।

मुझे उसी समय राजपद से, राज्य से संसार शरीर भोगों से वैराग्य हुआ। मैंने दीक्षा लेकर कठोर तप करना प्रारंभ किया। आचार्य के आदेश से आचार्यपद ग्रहण किया। वही सुदत्त नाम का आचार्य बनकर इस समय तुम्हें उपदेश दे रहा हूँ।

यशोधर राजा का गुणसिंधु नाम का मंत्री था। उसे संसार से वैराग्य हुआ, तब उसने अपना मंत्रीपद अपने पुत्र नागदत्त को दिया। वह घर में रहकर गृहस्थी में सधने

योग्य तप करता रहा। अन्त में समाधिमरण कर श्रीमत नाम के सेठ के घर कल्याणमित्र नाम का पुत्र बना है। वही जिनभक्त कल्याणमित्र हुआ। उसीने राजा यशोमति को हिंसा से बचाया था। अपनी भवावली व अन्य की भवावलियाँ सुनकर और दृढ़ वैराग्य को प्राप्त– मारीदत्त राजा ने अन्य पैंतीस राजाओं के साथ दीक्षा ली।

उसी समय अभयरूचि क्षुल्लक ने मुनिदीक्षा तथा अभयमति क्षुल्लिका ने आर्यिका दीक्षा ली। तपस्या करके 15 (पंद्रह) दिन की सल्लेखना धारण कर समाधिमरण कर दूसरे ईशान स्वर्ग में देव बने।

सुदत्ताचार्य सिद्धगिरि नामके पर्वत पर सल्लेखना धारण कर समाधिमरण करके सातवें स्वर्ग में देव बने।

यशोमति राजा, कल्याणमित्र, मारिदत्त, कुसुमावली, अभयमति– ये सभी तप करके अन्त में स्वर्ग में देव बने हैं।

पुष्पदन्त कवि के द्वारा चरित प्राकृत भाषा के जसहरचरित्र के आधार पर लिखित हिन्दी भाषा में निवद्ध महापुरूष यशोधर नामक चरित्र पूर्ण हुआ।

महापुरूष सुदर्शन

मध्यलोक के जम्बूद्वीप के आर्यखण्ड के भरतक्षेत्र में **अंग** देश था। उसकी राजधानी **चम्पापुरी** थी। चम्पापुरी के राजा का नाम **धात्रीवाहन** था। उसकी पटरानी का नाम **अभयमती** था।

इसी नगरी में सेठ **वृषभदास** भी रहते थे। इनकी पत्नी का नाम **जिनमती** था। एक दिन जिनमती ने प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में चार स्वप्न देखे थे। उसने स्नान आदि के बाद अपने पति सेठ वृषभदास के पास जाकर कहा–

नाथ! आज मैंने चार स्वप्न देखे हैं। पहले स्वप्न में मुझे एक सुन्दर मङ्गलमय कल्पवृक्ष दिखा। दूसरे स्वप्न में सुरप्रासाद (देवताओं का महल) दिखा। तीसरे में विशाल समुद्र और चौथे में बढ़ती हुई अग्नि दिखी। कृपा करके इनके फल बताइए।

शुभ स्वप्नों को सुनकर सेठ वृषभदास प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा– हे प्रिये! हमारे पुण्योदय से नगर के बाहर के उद्यान में तीन ज्ञान के धारी, परमपूज्य, चलते–फिरते सिद्ध श्री **सुगुप्तिसागर** मुनिवर पधारे हैं। हम दर्शन कर उन्हीं से स्वप्नों के फल के बारे में पूछेंगे। **बड़े पास हों तो अल्पज्ञ को जवाब देना ठीक नहीं है।**

वे दोनों पहले जिनमंदिर गए। बाद में उद्यान में गए, जहाँ पूज्य सुगुप्तिसागर मुनिवर विराजमान थे। उनके दर्शन कर नम्रतापूर्वक स्वप्न बताकर उनके फल पूछे। तब मुनिवर ने बताया–

सुन्दर कल्पवृक्ष दिखने का फल यह है कि तुम्हें कामदेव के समान सुन्दर, जगत में प्रसिद्धि पानेवाला गुणवान पुत्र होगा।

सुरप्रासाद दिखने का फल यह है कि वह पुत्र न केवल मनुष्यों अपितु देवताओं के द्वारा भी पूज्य होगा।

विशाल समुद्र दिखने का फल है कि वह समुद्र के समान गंभीर होगा।

बढ़ती हुई अग्नि दिखने का फल है कि वह जीव इसी जन्म में सभी कर्मों का नाश कर मुक्त होगा। वह पाँचवाँ अन्तःकृत केवली होगा।

गुरूदेव के मुखारविन्द से शुभ स्वप्नों का शुभ फल जानकर वे दोनों पति–पत्नी प्रसन्न हुए।

उनके दिन शुभकार्यों में बीतने लगे। शुभ समय पर जिनमती ने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया।

जिनमंदिर में दानादि देकर सेठ वृषभदास ने पुत्र के जन्म का उत्सव धूमधाम से मनाया। दिखने में कामदेव के समान होने से उसका नाम **सुदर्शन** रखा।

सुदर्शन अपनी बालसुलभ क्रियाओं के कारण सबका चहेता, प्रिय बन गया। वह धीरे–धीरे सब को प्रसन्न करता हुआ बड़ा होने लगा।

वृषभदास के एक अत्यन्त प्रिय मित्र थे। सागरदत्त उनकी पत्नी का नाम सागरसेना था। वृषभदास और सागरदत्त में प्रगाढ़ मित्रता थी। सो एक दिन बातचीत में सागरदत्त ने वृषभदास से कहा–

मित्र! मेरे घर सन्तान का जन्म होनेवाला है। यदि मेरी पुत्री होगी तो मैं आपके पुत्र को ही दूंगा। **प्रबल इच्छा बांझ (व्यर्थ) नहीं होती।** संयोग से सागरदत्त के पुत्री का ही

जन्म हुआ। वह बालिका रूप लावण्य से सुन्दर थी, सो उसका नाम **मनोरमा** रखा गया। बालक सुदर्शन जब पढ़ने योग्य हो गया तब गुरू के पास अध्ययन के लिए भेजा। उसी भव से मोक्ष जानेवाले उस बालक के पास असाधारण प्रतिभा थी, सो शीघ्र ही अनेक शास्त्र, कलाएं सीखकर सुदर्शन घर आया।

राजा के पुरोहित के एक पुत्र का नाम कपिल था। सुदर्शन और कपिल में गहरी मित्रता थी। वे दोनों साथ–साथ मंदिर जाते, खेलते, कूदते, तत्त्वचिंतन भी आपस में करते थे।

एक बार सुदर्शन मंदिर जा रहे थे, तब उन्हें मनोरमा दिखाई दी। उसको देखते ही सुदर्शन पूर्व संस्कार के कारण उसके रूप–सौन्दर्य पर मोहित हो गए। उस दिन से उन्हें सोते–जागते मनोरमा ही दिखने लगी। उनकी अवस्था दिनों–दिन बिगड़ने लगी, (वैद्यकीय उपचार के बाद भी सुदर्शन ठीक नहीं हुए, सुदर्शन के माता–पिता चिंता में पड़ गए) तब कपिल के द्वारा उन्हें पता चला कि मनोरमा के रूप–सौन्दर्य से सुदर्शन की ऐसी अवस्था हुई है। सेठ वृषभदास प्रसन्न हुए क्योंकि सुदर्शन के बचपन में ही मनोरमा से उसका विवाह तय हो चुका था।

उधर सुदर्शन को देखने के बाद मनोरमा की भी वैसी ही दशा हो चुकी थी। मनोरमा की सहेलियों से पता चलने पर सागरदत्त सेठ वृषभदास के घर विवाह का निमंत्रण लेकर गए।

शुभ समय पर दोनों का धूमधाम से विवाह सम्पन्न कराया। समय बीतते देर नहीं लगती। सुदर्शन और मनोरमा

को एक सुन्दर पुत्र की प्राप्ति हुई। उसका नाम **सुकान्त** रखा।

एक दिन भव्यों के भाग्य से चम्पापुर के उद्यान में **समाधिगुप्त मुनिवर** पधारे थे। वृषभदास आदि नागरिक उनके दर्शन हेतु गए थे। उनके उपदेश को सुनकर सेठ वृषभदास ने विचार किया–

अहो, मेरा जीवन तो विषयभोगों में व्यर्थ जा रहा है। संसार व्यर्थ है। सब संयोग क्षणिक हैं। आयु के अन्त में क्षणभर में बिखर जाएंगे। अतः अब (आर्तध्यान छोड़कर) धर्मध्यान कर आत्मकल्याण की सोचनी चाहिए। ऐसा विचार कर उन्होने तुरंत ही समाधिगुप्त मुनिराज से दीक्षा की याचना की।

उन्हें निकट भव्य जानकर समाधिगुप्त मुनिराज ने दीक्षा दी। जिनमती ने भी संसार को असार जानकर आर्यिका दीक्षा ली। दोनों ने धर्ममय जीवन बिताकर अन्त में संन्यासमरण कर स्वर्ग में देवपद प्राप्त किया।

पिता की दीक्षा के समय से ही सुदर्शन को भी दीक्षा लेने का विचार तो आया, परन्तु पूर्ण संयम धारण न कर सकने के कारण वे घर में ही अणुव्रतों का पालन कर रहे थे।

पुत्र और पत्नी को धर्म की शिक्षा देते थे। वे जानते थे कि **जीव को सुखी रहने के लिए धन नहीं, धर्म चाहिए।** स्वयं धर्ममय जीवन बिताकर उनको भी धर्म की राह दिखाते थे। अष्टमी, चतुदर्शी के दिन श्मशान में जाकर वस्त्रों का त्यागकर धर्मध्यान करते थे। उनका जीवन धर्ममय था।

एक दिन सुदर्शन अपने मित्र कपिल के साथ चर्चा करते हुए जा रहे थे। तब उन पर कपिल की पत्नी कपिला

की नजर पड़ी। सुदर्शन के सौन्दर्य पर वह आसक्त हो गई। रात–दिन सुदर्शन से मिलने की सोच रही थी। **विवाहित स्त्री के लिए परपुरूष का विचार भी नरक का द्वार है। परन्तु कामवासना मनुष्य को अन्धा कर देती है।** विवके समाप्त कर देती है। अरे, परस्त्री या पुरूष का विचारमात्र दुर्गति में ले जाता है, समागम क्यों नहीं ले जायेगा? उसने अपने भाव दासी को बताये। **कामान्ध विचारशक्ति खो देता है।** दासी ने उसे समझाने की कोशिश की। कोई किसी को समझा नहीं सकता, समझाने की कोशिश करता है, करनी भी चाहिए। दासी ने कहा– मालकिन छोटी मुँह बड़ी बात। **हित की बात बताना सभी का धर्म है**, चाहे वह छोटा हो या बड़ा; वैसे तो हम आपकी दासी हैं। पर समझ की बात यह है कि सदर्शन भी विवाहित हैं और आप भी, अतः आपको ऐसा विचार छोड़ देना चाहिए।

जैसे **पित्त बुखार वाले को मीठा दूध भी कड़वा लगता है, घोर मिथ्यात्वी को जिनवचन अच्छे नहीं लगते**, उसी प्रकार दासी की बात कपिला को अच्छी नहीं लगी। अरूचिकर बातों से क्रोध जन्म लेता है। कपिला को गुस्सा आया। **गुस्से के समय सद्बुद्धि भाग जाती है।** मनुष्य अविवेक की बातें करता है। कपिला ने कहा–

हमारी रोटियों से पेट भरनेवाली दासी अपने विचार, ज्ञान अपने पास रख, मुझे उससे मिलवाने की कोशिश कर जितना कहती हूँ, जैसा कहती हूँ, उतना और वैसा ही कर। देख आज कपिल कामकाज के कारण नगरी से दूर गए हुए हैं। कई दिनों बाद लौटेंगे। तू कल ही सुदर्शन को यह

कह कर बुला ला कि तुम्हारे मित्र आये हैं, बीमार हैं। मिलने आओ?

दासीने सोचा **तीव्र कषायी, अविचारी और कामान्ध को समझाना वैसा ही व्यर्थ है, जैसे मृगमरीचिका में पानी खोजना। समझदार का काम समझाना है। मानना, न मानना जीव की स्वयं की होनहार है।**

दूसरे दिन दासी को सुदर्शन दिखे। दौड़ती हुई उनके पास गई। **पराधीनता सब करवाती है।** भाव न हो तब भी पराधीनता से सब करना पड़ता है। जैसे ज्ञानी भोगों को जहर जानता है, पर चारित्र मोह के तीव्र उदय से पराधीन होकर भोग भोगते देखा जाता है। दासी ने सुदर्शन से कहा– आपके मित्र लौट आए हैं, उनकी तबीयत खराब है, आपको याद कर रहे हैं।

सुदर्शन ने कहा– हे दासी, वे तो कई दिनों बाद लौटने वाले थे। अचानक क्यों लौट आए हैं? क्या तबीयत ज्यादा ही खराब हो गई थी, जिससे लौट आए हैं? दासी ने कहा– ऐसा ही समझों । **राग भी अन्धा होता है।** मित्र के राग में अन्धा सुदर्शन जल्दी–जल्दी चलकर कपिल के घर पहुँच गएं। **लोहे की बेडी से भी राग की बेड़ी खतरनाक होती है। लोहे की बेड़ीवाला धर्मध्यान कर सकता है। राग की बेड़ीवाला नहीं।** लोहे की बेड़ीवाला मजबूर है। राग की बेड़ीवाला स्वयं बेड़ी में फँसा हुआ है। लोहे की बेड़ीवाले **पाण्डव** मोक्ष गए। राग की बेड़ीवाला मोक्ष नहीं जा सकता, संसार में ही रूलता है। यद्यपि लोहे की बेड़ी से राग की बेड़ी तोड़ना ज्यादा आसान है। पर राग की बेड़ीवाला उसी बेड़ी में रहना चाहता है, उसे तोड़ना नहीं चाहता। लोहे की

बेड़ीवाला उस बेड़ी से विरक्त है। राग की बेड़ीवाला राग की बेड़ी में आसक्त है।

सुदर्शन दासी के द्वारा बताए कमरे में गए। वहाँ कपिला रजाई ओढ़कर झूठ–मूठ की सोई थी। सुदर्शन उसे कपिला समझ उसके पास बैठ गए। पूछा– मित्र क्या हुआ, तबीयत कैसे खराब हो गई? वासनाओं का अन्धापन तेजी दिखाता है। उसे समय का विलम्ब सहन नहीं होता। **वासना वैसे तो अन्धी होती है, पर भागने में तेज होती है।** लोक में अन्धा भागता नहीं दिखता। पर वासना का अन्धा तेजी से दौड़ लगाता है। उसने धीरे से कहा–

हे प्यारे , तुम्हारे समागम के बिना, प्राण अस्थिर है। आओ गले मिलो ऐसा कहते हुए वासना में अन्धी कपिला ने सुदर्शन का हाथ पकड़कर अपनी छाती पर रखना चाहा।

स्त्री की आवाज सुनकर शीलव्रती सुदर्शन भौचक्का रहा। **रागियों के लिए भोग अमृत लगते हैं, पर विरक्त पुरुष को तो जहर जैसे ही दिखते हैं कहा भी है–**

राग उदे भोगभाव लागत सुहावने से।
बिना राग ऐसे लगे जैसे नाग कारे हैं।।

पूण्य हीन रागी भोगों के पीछे रातदिन दौड़ लगाता है। पर पुण्य के अभाव में पाता कुछ नहीं । पुण्यवान को भोग मिलते हैं, पर धर्मात्मा पुण्यवान भोग की प्राप्ति होने पर भी उससे विरक्त ही रहता है। विरक्ति से उसके कर्म की निर्जरा होती है। रागी को कर्म का बन्ध होता है, विरागी के कर्म की निर्जरा होती है।

शीलव्रती के लिए संसार की समस्त स्त्रियाँ काठ की पुतलियाँ हैं। सुदर्शन को आघात लगा कि यह कपिल नहीं

है, बल्कि मित्र की पत्नी है। मित्र की पत्नी बहन समान होती है।

उसने कहा–

बहन, आप की इच्छा व्यर्थ है। क्योंकि मैं तो नपुंसक हूँ। मैं बाहर से कामदेव जैसा सुन्दर हूँ, पर अन्दर से नपुंसक हूँ, जैसा आप सोच रही हो, वैसा पुरूष मैं नहीं हूँ। आपकी इच्छा पूर्ण करने में असमर्थ हूँ।

यह कहकर सुदर्शन तुरन्त ही उठकर चल दिये, जाते– जाते उन्होंने कहा–बहन, **शीलव्रत व्रतों में सबसे बड़ा है। उसका जिसने पालन किया, समझो उसने सभी व्रतों का पालन किया। इसका पालन जिससे नहीं हो पाया, उसके शेष सभी व्रत व्यर्थ हैं।** इसे स्वप्न में भी मलिन मत करो।

पुण्य के बिना इच्छाएं नपुंसक हैं। नासमझ के लिए उपदेश व्यर्थ हैं। विवेकी ज्ञानी अपने विवेक, पुरूषार्थ और दृढ इच्छाशक्ति से विपत्तियों पर विजय पाते है। सुदर्शन नपुंसक नहीं थे। **पुण्यात्मा शरीर से नपुंसक नहीं होते हैं।** सुदर्शन ने अपने को नपुंसक बताकर विपत्ति दूर की। उसी भव से मोक्ष जाने वाला नपुंसक कैसे होगा?

पापी को भोगों का अभाव खीज उत्पन्न करता है। धर्मात्मा भोगों के संयोग या वियोग में तत्त्वज्ञान का जल पीकर शान्ति का अनुभव करते हैं। जिनके ह्रदय में तत्त्व का ज्ञान नहीं, उनको पुण्य–पाप के उदय सतत बेचैन –दुःखी ही रखते हैं। जिनके ह्रदय में तत्त्वों का ज्ञान है, समझो उनके ह्रदय में शान्ति का झरना सतत बहता है।

जीवन में **शान्ति के लिए सामान नहीं, समता चाहिए,** (परिग्रह) **संचय नहीं, दान चाहिए, धन नहीं, धर्म चाहिए,**

प्रदर्शन नहीं, दर्शन (देवदर्शन और आत्मदर्शन) चाहिए, सामग्री नहीं सुसंस्कार चाहिए।

विवेक से युक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। सुदर्शन अपनी युक्ति से पाप से बच गए, संकट से बच गए। मनुष्य युक्ति से काम ले तो सभी पापों से बच सकता है।

यह घटना या दुर्घटना आयी गई, हो गई। सुदर्शन अपना जीवन धर्म से जोड़कर चलते थे। भोगों से जोड़कर नहीं, बल्कि भोगों से दूर रखने में ही भलाई समझते थे। वे जानते थे कि –

वास्तव में जगत् से उदास जीव ही सुखी होते हैं। कहा भी है–

स्वास्थ के साँचे परमारथ के साँचे चित्त,
साँचे साँचे बैन कहैं साँचे जैनमती हैं।
काहू के विरूद्धि नाहिं परजाय बुद्धि नाहिं,
आतम–गवेषी न गृहस्थ हैं न जती हैं।।
सिद्धि ऋद्धि वृद्धि दीसै घट में प्रकट सदा,
अंतर की लाच्छि सौ अजाची लच्छपती हैं।
दास भगवन्त के उदास रहैं जगत सौं,
सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं।।

अर्थः– स्व अर्थ (निज आत्मा) और परम अर्थ मोक्ष में जिनका चित्त लगा हुआ है, जो लक्ष्य के सच्चे और वचनों के सच्चे होते हैं, वे ही सच्चे जैनधर्मी हैं। किसी से विरोध नहीं, पर्याय पर जिनकी बुद्धि नहीं, मात्र अपनी आत्मा के खोजी हैं, वे न गृहस्थ हैं, न संन्यासी हैं। जिन्हें आत्महित की सिद्धि ही सिद्धि तथा आत्मशक्तियाँ ही ऋद्धि तथा आत्मगुणों की वृद्धि ही वृद्धि हृदय में प्रगट दिखती हैं। अपने अंतर का वैभव जिन्हें लक्ष्मी दिखता है। वे अयाचक

लक्ष्मीपति हैं। जो भगवान के सच्चे भक्त होते हैं, वे संसार से उदास रहते हैं, संसार से उदास रहने वाले सम्यक्त्वी जीव ही संसार में सुखी होते हैं।

इस तरह वैराग्य की ड़ोर से बंधे सुदर्शन का जीवन सुखपूर्वक बीत रहा था। ऋतुएं बदलती रहीं। एक बार वसन्त ऋतु आया। सब लोग उद्यानों में घूम फिर कर कषायों का दु:ख, आनन्द मानकर लूट रहे थे। **कषायों में सुख का अभाव वैसे ही होता है, जैसे अग्नि में शीतलता।** फिर भी मोही जीव कषायों में ही आनन्द तलाशता है। अतः प्रायः सभी नगरवासी अपने–अपने साधनों से चम्पा नगरी के उद्यान में जा रहे थे। **जहाँ सुख माना, वहाँ जीव साधनों की कमी नहीं छोड़ता।**

राजा की रानी अभयमती के पुष्पक रथ में राज पुरोहित कपिल की पत्नि कपिला भी बैठी थी। उनके रथ के ठीक पीछे सेठ सुदर्शन की पत्नी मनोरमा का रथ चल रहा था। सुदर्शन को देखकर अभयमती ने पास में बैठी कपिला से पूछा–

हे कपिले! यह कामदेव के समान सुन्दर युवक कौन हैं? और उसके पास गोद में बच्चे को लिए हुए युवती कौन है?

अभयमती सुदर्शन के रूप सौन्दर्य को देखकर उस पर भीतर ही भीतर आसक्त हो गई थी। **तत्त्वज्ञान का अभाव हो तो सुन्दर जड़ पदार्थों के प्रति मनुष्य आकर्षित होते ही हैं। उस पदार्थ का मिलना, नहीं मिलना पुण्य पाप के अधीन होता है। पर तत्त्वज्ञान के अभाव में भावनाओं पर नियन्त्रण कौन रखे? तत्त्वज्ञान से ही भावनाएं काबू में रहती हैं।** अज्ञानियों के पास पुण्य के उदय से अन्य वस्तुएं होती

हैं, पर सच्चे पुरूषार्थ के अभाव में तत्त्वज्ञान का अभाव होता है। **तत्त्वज्ञान के अभाव में (छह खण्ड का) विश्व का वैभव पाने पर भी जीव दुःखी रहता है। तत्त्वज्ञान होने पर वैभव के अभाव में भी जीव सुखी रहता है।**

कपिला अभयमती के भावों को समझ गई थी। **कषायी जीव दूसरे कषायी जीवों के भाव आसानी से जानता है।** ज्ञानी मनुष्य दूसरे ज्ञानी, अज्ञानी दोनों के भावों को पहिचानते हैं। परन्तु अज्ञानी ज्ञानी के भावों को नहीं जानता। सिर्फ अज्ञानी, अज्ञानी के हृदय को जानता है। कपिला ने अभयमती से कहा–

हे रानी, यह युवक इसी नगरी का है, इसका नाम सुदर्शन है, इसके पास बैठी युवती इसकी पत्नी है। उसकी गोद का बच्चा इन दोनों की सन्तान है। गोद का बच्चा सुदर्शन की सन्तान कहलाता है, पर इसका नहीं है।

अभयमती ने कहा– इसका नहीं है, ऐसा तू कैसे कह सकती है?

कपिला ने कहा– क्योंकि यह नपुंसक है।

अभयमती– चल झूठी, कहीं की। यह सुन्दर युवक नपुंसक नहीं हो सकता? क्योंकि यह पुण्यवान दिखता है, पुण्यवान जीव नपुंसक नहीं होते। पुण्यवान भी नपुंसक हो तो उनका पुण्य किस काम का? यह नपुंसक नहीं है, हो ही नहीं सकता। इसलिए यह पुत्र इसी का होगा। कपिला– भले ही आप मेरी बात का विश्वास मत करो पर सच कह रही हूँ कि यह सचमुच में नपुंसक ही है।

अभयमती–तु इतना जोर देकर कैसे कह रही है कि यह नपुंसक ही है।

कपिला – क्योंकि मैं इसे अच्छी तरह से जानती हूँ। यह मेरे पति का गहरा दोस्त है।

अभयमती– तू कितना ही जोर देकर कह मैं इसे नहीं मानती कि यह नपुंसक है। क्योंकि ऐसा सुन्दर युवक नपुंसक हो ही नहीं सकता।

कपिला ने कहा– मैंने इसे प्रत्यक्ष देखा है, यह नपुंसक है।

अभयमती– तूने प्रत्यक्ष कैसे देखा?

तब कपिला ने रानी को विश्वास दिलाने के लिए शुरू से अन्त तक की अपनी घटना सुनाई और कहा– हे रानी! अब तो विश्वास करो।

अभयमती ने कहा– अरे, तुझसे पिण्ड छुड़ाने के लिए इसने झूठ बोला है।

कपिला– हे रानी, यदि मेरी बात का विश्वास न हो तो आप प्रत्यक्ष करके देख लो। मैं तो सामान्य महिला थी। आप राजा की पटरानी हो ऊपर से गजब की खूबसूरत भी हो, आप ही उसे अपने वश में करके देख लो। आप से तो पिण्ड़ नहीं छुड़ाएगा।

यदि उसे अपने वश में करके उसके साथ समागम करके दिखाओगी तो मान जाऊंगी कि आप कमाल की सुन्दरी हो और सचमुच ही पटरानी लायक भी। नहीं कर पायी तो आपका सौन्दर्य व्यर्थ है। जीवन व्यर्थ है।

करेला वह भी नीम चढ़ा। यह कहावत वहाँ चरितार्थ हो गई। अभयमती सुदर्शन के सौन्दर्य पर मोहित थी, उस पर कपिला के उत्तेजना बढ़ानेवाले ये शब्द, आग में घी का काम कर गए। अभयमती ने कषाय के आवेश में कहा– भले ही सुदर्शन धर्मात्मा हो, जहाँ पाप की बातें होती हो, वहाँ

खड़ा भी न रहता हो, पर सौन्दर्य से धर्म को पिघलवाने में कितनी देर लगती है? देख, मैं अपने सौन्दर्य के जाल मैं कैसे फँसाती हूँ। अभयमती कपिला के सामने पातिव्रत्य धर्म शीलस्वभाव को तिलांजलि देकर प्रतिज्ञा कर बैठी कि

"मै सुदर्शन को अपने वश में करूँगी, नहीं तो अपने प्राणों को त्याग दूँगी।"

वासना तो अन्धी होती ही है। कषाय के रंग में यह जीव कैसे रंग जायेगा? कुछ पता नहीं। उसे खुद को भी पता नहीं कि वह क्या कर रहा है? झूठ के कार्य को सत्य मानता है। रोग के कार्य को स्वास्थ्य के कार्य समझता है। अधर्म को ही धर्म जानता है। **कषाय और अज्ञान का चोली और दामन का साथ होता है।**

अभयमती आवेश में प्रतिज्ञा तो कर बैठी, पर आवेश शान्त होने पर सोचने लगी कि प्रतिज्ञा को कैसे पूरी करूँ? कौन–सा उपाय करूँ? जिससे सुदर्शन उसके वश में हो जाये! वसन्तोत्सव में और उसके बाद के दिनों में वह इसी उधेड़बुन में रहने लगी। वह गुम–सुम, बेचैन रहने लगी। उसका स्वास्थ्य गिरने लगा।राजा धात्रीवाहन ने राजवैद्यों से इलाज कराया, पर पाप के विचारों में, **पाप के उदय में बाहरी इलाज व्यर्थ जाते हैं।** अभयमती भीतर से बेचैन रहती, पर बाहर से ठीक होने का नाटक करती थी। जैसे मिट्टी से मूल छिपा नहीं रह सकता, उसी तरह निकटस्थ से अन्दरूनी हाल छिपे नहीं रह सकते। अभयमती की धाय ने अभयमती से पूछ ही लिया–

बेटी, कई दिनों से तुम्हारी मनोदशा ठीक नहीं दिख रही है? क्या कारण है कि तुम ठीक से न खाती हो, न सोती हो, तुम्हारा जीवन कष्टमय दिख रहा है। जो कारण

हो सो कहो। **कष्ट की अति, मुँह खुलवा देती है।** अभयमती का सारा दर्द बाहर आया। धाय के शब्द रूपी गर्मी से उसका दर्द पिघलकर बाहर निकला। उसने धाय से कहा–

हे माता समान धाय, मेरी यह दशा सुदर्शन के कारण हुई है। यदि यही हाल रहा तो मैं एक दिन मर जाऊंगी। मुझे जीवित देखना चाहती हो तो सुदर्शन से किसी भी तरह से मेरा समागम कराओ। नहीं तो मुझे मरा समझ लो।

धाय अभयमती के शब्द सुनकर सन्न रह गई। अचानक बिन सोची बात सुनने के बाद मनुष्य की ऐसी ही दशा होती है। उसने सोचा नहीं था कि पटरानी ऐसी होगी। उसने कहा–

हे रानीजी, यह अनुचित और असम्भव है। आप राजा की सबसे प्रिय रानी हो। राजा आपको सबसे ज्यादा चाहते हैं। राजा साहब को भनक भी लगे तो तुम्हें जिंदा दी चुनवा देंगे, क्योंकि सच्चा प्रेम धोखा पसंद नहीं करता। इस राज्य की पटरानी ही ऐसा अनैतिक काम करेगी तो बाकी प्रजा की स्त्रियों पर इसका क्या असर पडेगा? तुम्हारा गलत कदम कितनी मुसीबतें लायेगा– क्या यह सोचा है तुमने? इसलिए तुम यह विचार मन से निकाल दो। तुम्हारे चारों ओर चौबीसों घंटे पहरा रहता है। तुम्हारे हर कदम को कई आंखें देखती हैं। राजा सुन्दर सुशील धर्मात्मा हैं। उन्हीं में मन लगाओ। शील का विचार करो, कुशील का नहीं। **कुशीली नरक में ही जन्मते हैं**। शीलवान स्वर्ग में।

अभयमती का मन दुराचार में फँस चुका था। **दुराचारी मन पर सन्मार्ग का उपदेश असर नहीं करता।**

उसे धाय के शब्द बुरे लग रहे थे। उसने साम का रास्ता छोड़कर दण्ड के रास्ते पर आकर धाय से कहा–

अरी शीलवती धाय, बड़ी आयी मुझे समझाने। मैंने तो तुम्हें मार्ग बताने वाली जानकर यह सब कहा था। तू तो मेरा काम साधने की बजाय, मुझे उपदेश दे रही हो। यदि तूने मेरी सहायता नहीं की तो मैं तुझ पर कुलटा होने का आरोप लगाकर बदनाम कर दूंगी। चुपचाप मेरी सहायता कर। मेरी सहायता करेगी तो तुझे मनचाहा धन ईनाम में दूंगी। इतना धन दूंगी कि तेरी सात पीढ़ियों तक खत्म नहीं होगा।

धाय दण्ड से, बदनामी से भयभीत होकर लालच में फँस गई। लोभी **दरिद्री को धन प्रिय होता है।** धाय के मन में आया कि सहायता करने से दण्ड और बदनामी से बच जाऊंगी साथ में ईनाम में धन भी मिलेगा। उसने कोई उपाय नहीं देखकर भी सहायता करने की हाँमी भर दी। उसे लगा समझाने पर भी यह कुशील के रास्ते पर ही चलना चाहती है, तो मैं क्या कर सकती हूँ? हम नौकर लोग बडे ही पराधीन होते हैं। **पूर्व जन्मों में जिन्होंने तीव्र पापभाव किए हैं, वे ऐसे_महापराधीन नौकर बनते हैं।** धाय चतुर, चालाक महिला थी, उसने दुनिया देखी थी। उसने कहा– मैं कोई उपाय करती हूँ।

धाय ने रातभर सोचा। उसे एक उपाय सूझा। **सोचने पर उपाय मिल ही जाते हैं।** प्रातः उठकर कुम्हार के पास गई उससे पुरूष की सात मूर्तियाँ बनाने के लिए कहा। रानी का महल सात परकोटे का था। हर परकोटे पर पहरा था। उसे पता था कि अष्टमी, चतुर्दशी के दिन प्रोषध

उपवास के साथ रात्रि में सुदर्शन श्मशान में ध्यान लगाता है।

धाय दिन में कुम्हार के पास गई। देर रात को एक पुरूष का पुतला (मूर्ति) लेकर आयी। रात ज्यादा होने से द्वारपाल ने उसे रोका– कहा, इतनी रात को रानी के महल में नहीं जा सकती। धाय ने कहा– तू मुझे नहीं जानता, इसलिए रोक रहा है।

द्वारपाल ने कहा– तुम कोई भी हो भीतर नहीं जा सकती। द्वारपाल के रोकने पर भी वह भीतर जाने लगी, तब द्वारपाल ने उसे बाहर की ओर खींचा। खींचातानी में मिट्टी का पुतला गिरकर टूट गया। तब धाय बोली कि मैं महारानी की धाय हूँ। महारानी का आज उपवास है। इस मिट्टी के कामदेव की पूजा करने वाली थी। तूने मूर्ति तोड़ दी। तुझे इसकी सजा दिलाऊंगी। तेरी नौकरी और जान दोनों गए समझ। द्वारपाल गिड़गिड़ाया। तब उसने कहा–माफ कर देती हूँ। पर ध्यान रखना दुबारा मत टोकना। मैं दूसरी मूर्ति लेकर आती हूँ। वह दूसरा पुतला उठाकर लायी। पहले वाले पहरेदार ने उसे नहीं टोका पर दूसरे ने टोक दिया। पूर्व की तरह भय दिखा, दिखाकर दूसरे फिर तीसरे, चौथे, पांचवें, छठे, सातवें पहरेदार को अपने वश में कर आठवीं बार वह श्मशान में पहुँच गई। सुदर्शन को अपने मजबूत कन्धों पर उठाकर ले आयी। ड़र के मारे किसी भी द्वारपाल ने उसे टोका नहीं। सीधे रानी अभयमती के कक्ष में गई। वहाँ सुदर्शन को उतार कर रानी से कहा–

रानीजी, आपकी इच्छा के अनुसार सुदर्शन को लायी हूँ। मैंने मेरा काम पूरा कर दिया। आगे आपकी मर्जी, जो चाहो सो कर लो। ध्यान में लीन सुदर्शन से धाय बोली–

हे सुदर्शन! आप महाभाग्यवान हो, महासम्राट् धात्रीवाहन की पटरानी अभयमती आपको चाहती है। आप इनकी इच्छा पूरी करो।

सुदर्शन ध्यान में लीन थे। उन पर धाय के शब्दों का असर नहीं हुआ। होता भी कैसे? वे तो ध्यान में लीन थे। **ध्यानी पर अन्य बातों का असर नहीं होता। ध्यान को सबसे बड़ा मुक्ति के लिए उपाय बताया, क्योंकि सच्चे ध्यान में अपने विषय के अतिरिक्त अन्य विषय पर ध्यान नहीं जाता।** सुदर्शन आत्मचिंतन, तत्त्वविचार और वैराग्यभावना में लीन थे।

अपनी बातों का सुदर्शन पर असर न देखकर धाय तो वहाँ से यह कहकर गई कि रानीजी, मुझ जैसी की बातों का इस पर असर नहीं हुआ, अब आप ही इसे संभालिए।

धाय के जाने के बाद अभयमती सुदर्शन की मनुहार करने लगी। भोगों की भीख मांगने लगी। हे मेरे प्रिय, मैं सत्य कहती हूँ, मेरे हृदय में आपका गहरा निवास है। आपके अलावा मुझे कोई अच्छा नहीं लगता। मेरे प्रेम के पात्र एकमात्र आप ही हो। मैं सम्पूर्ण जीवन आपके चरणों में समर्पित करती हूँ। जीवनभर आपकी सेवा करूँगी। मेरे जीवनधन! मेरी इच्छा पूरी करके मुझे जीवनदान दो। आपको राज्य के भोग कराऊंगी। अनेक प्रकार से उसे वश में करने के प्रयास किये। अनेक कामोत्पादक वचन कहे। अनेक कामभरी क्रियायें भी कीं, परन्तु **हवा को मुट्ठी में**

बांध नहीं सकते, उसी प्रकार वह सुदर्शन को अपने वश में नहीं कर सकी। जैसे वज्र में अन्य धातु प्रवेश नहीं कर सकती, उसी प्रकार सुदर्शन में अभयमती की बातें प्रवेश नहीं कर पाईं। वह तो मेरू की तरह अड़िग रहे।

असफलता क्रोध की जननी है। जब अपने कामभरे शब्द और कामभरी क्रियायें व्यर्थ गईं, तब गुस्से में आकर उसने सुदर्शन को उठाकर बिस्तर पर पटक दिया और उसके साथ जबरदस्ती करने लगी। उसके अंग उपांग को कामवासना की दृष्टि से छेड़ने लगी। पर सुदर्शन जरा भी विचलित नहीं हुए। **धर्मात्मा वासनाओं में नहीं बहता। जो वासना में बहे वह धर्मात्मा नहीं हो सकता।**

अंतिम उपाय के रूप में वह सारे वस्त्र उतारकर नग्न होकर नाचने गाने लगी। पर बर्फ में आग लगना असम्भव है, उसी प्रकार धर्मात्मा का वासना की ओर झुकना असंभव था। सुदर्शन ने आँख तक नहीं खोली। सुदर्शन ने अपने परिणामों की शुद्धि बनाये रखी। पापी आत्मा अभयमती ने पापवासना से धर्म को जीतना चाहा। पर **पापभाव से धर्म कभी प्राप्त नहीं होता।** पापों से धर्म नहीं पसीजता, न पिघलता है। धर्ममूर्ति सुदर्शन अभयमती की पाप वासना में नहीं फँसे।

अभयमती के असफल प्रयासों में सुबह होने को आई। प्रातःकाल होता देखकर अभयमती ने पासा पलटा। **दुष्ट पाला बदलने में देर नहीं करते।** भाव निरंतर बदलते रहते हैं। अभयमती ने सोचा अब सुबह होनेवाली है। मेरा कृत्य सबके सामने आएगा। राजा मुझे दण्ड़ देंगे। इसे तो धर्मात्मा जानकर माफ कर देंगे। यह मेरी ओर आकर्षित नहीं हुआ, इसका दण्ड मैं क्यों भोगूँ? इसकी सजा इसे ही

दिलाऊँगी। धाय को बुलाकर कहा इसे ले जाओ। धाय ने कहा– रानीजी, अब इसे ले जाने का समय नहीं है।

उसने खुद के कपड़े फाडे। जोर–जोर से चिल्लाने लगी, रोने लगी। खुद को अपने ही नाखूनों से नोंचकर लहुलुहान कर दिया। रानी की आवाजें सुनकर सेवक दौड़कर आए। एक सेवक रानी की दशा देखकर राजा के पास गया। राजा से उसने कहा–

राजन्! कामान्ध, पापी, ढ़ोंगी सुदर्शन ने रानी की बुरी दशा की है।

सेवक की बात सुनकर बिना विचारे राजा ने तलवार उठाई और वह रानी के महल में पहुँचा। रानी की हालत देखकर क्रोध में उबलने लगा। सत्य जानने के लिए सुदर्शन से पूछा। पर सुदर्शन तो ध्यान में लीन मौन ही रहे। आग की तरह यह समाचार सारी चम्पानगरी में फैल गया। लोगों की भीड़ जमा हो गई। राजा ने आवेश में आकर आदेश दिया कि इस कामी, पापी को फाँसीघर ले जाकर इसे तलवार से मारा जाय।

लोगों ने कहा–पहले सुदर्शन से उसका पक्ष सुनकर इसे दण्ड दीजिए।

प्रजा के कुछ लोगों ने उनसे पूछा, पर सुदर्शन तो मौन थे, मौन ही रहें। प्रजा को अचम्भा हुआ। सभी निरूपाय हो गए। तब राजा के सेवक सुदर्शन को लेकर फाँसीघर ले गए।

वहाँ एक सज्जन ने राजा से कहा – सुदर्शन धर्मात्मा हैं।

राजा ने कहा–क्या मेरी पत्नी व्यभिचारिणी है? वह धर्मात्मा है, तो रानी के महल में क्यों आया? मंदिर आदि में जाता। यह चुप क्यों है? जवाब क्यों नहीं देता?

एक सज्जन– महाराज, यह अष्टमी, चौदस के दिन श्मशान में ध्यान के लिए जाता है। यहाँ कैसे आया पता नहीं। और ध्यान के काल में मौन ही रहता है। इसलिए चुप है। मेरा निवेदन है कि ध्यान टूटने पर इससे पूछ लीजिए। इसके बाद दोषी हो तो दण्ड दीजिए।

दूसरा बोला– महाराज! यह शूली पर नहीं चढ़ाया जा रहा। बल्कि इसके साथ हमारा पूरा परिवार ही शूली पर चढ़ने का अनुभव कर रहा है। हम अनाथ हो जायेंगे। इसका एक सुकान्त नाम का बालक है, वह पिताहीन हो जायेगा। इस की पत्नी विधवा हो जायेगी। पर राजा तो मोहांध अविवेकी हो चुका था। प्रजा में हाहाकार मच गया। लोग फूट–फूट कर रोने लगे। सुदर्शन के परिवार का हाल तो बहुत ही बुरा था।

राजा ने जल्लादों से कहा– इसे तुरन्त दण्ड दो।

जल्लादों ने तलवारों से कहा– हे तलवारों हम तुझे इस धर्मात्मा पर चलाना नहीं चाहते, पर क्या करें? हमारी मजबूरी है।

जल्लादों ने ज्योंहि तलवार उठायी। त्यों हि शील, धर्म तथा विशिष्ट पुण्य के प्रभाव से देवताओं के आसन हिलने लगे। देवताओं ने वहीं से ऋद्धि के बल से शूली को सिंहासन बना दिया तथा तलवार को हार बना दिया।

लोग आश्चर्य में पड़ गये। यह क्या हो गया? देवों ने ही धर्म और शीलवान् की रक्षा की। यद्यपि धर्मात्मा को ऐसी कोई चाह ही नहीं होती, कि कोई उनकी रक्षा करें, वे

जीवित रहें , वे तो चाहते हैं कि धर्म करते रहें, जीवन रहें या न रहें। वैसे भी जीवन तो आयुकर्म के अधीन है। उनका तो एकमात्र लक्ष्य शुद्धात्मा की अनुभूति की प्राप्ति, उसी में लीन होने का होता है। फिर भी देवगण धर्मात्माओं की पुण्योदय से रक्षा ही करते हैं। लोगों ने धर्म का आश्चर्य देखकर धर्मात्मा सुदर्शन की जयजयकार से आकाश गुंजायमान कर दिया।

एक देव ने आकर सुदर्शन को नमस्कार किया। मारनेवालों को पत्थर की तरह बना दिया। तथा उस यक्ष देव ने सुदर्शन की स्तुति की। कहा–

हे सुदर्शन ! आप धन्य हो । आप स्वयं प्राप्त भोगों से विरक्त रहे। धर्म का मार्ग उपसर्ग, संकट आने पर भी नहीं छोड़ा। सचमुच में धीर हो। संकट आने पर न्याय का मार्ग, धर्म का पथ आपने नहीं छोड़ा। आपके शीलधर्म के प्रभाव से हमारे आसन कम्पित हुए। धन्य हो, धन्य हो, आपकी जय हो, जय हो।

धर्मात्मा सब के लिए पूजनीय होते हैं। हम देवता भी आप जैसे धर्मात्मा के सेवक होते हैं। धर्म ही सबके लिए शरण है। भोगों के दासों को कोई नहीं पूजता। **भोगों का त्यागी सबके लिए पूज्य होता है**। संसार में प्रायः सभी भोगों के दास हैं, आप जैसा कोई बिरला ही इनका त्याग कर पाता है। भोगों का त्याग करना हर किसी के बस की बात नहीं है, आसान नहीं है। उसके लिए बहुत हिम्मत चाहिए। आपने संकट में भी मौन नहीं छोड़ा, धर्म नहीं तजा। आप वीर हो। **वीर चाहे जैसा संकट आये या भोग प्राप्त हो, अपना मन मलीन नहीं करता है।**

आप न केवल धर्मात्मा हो, बल्कि पुण्यशाली हो, क्योंकि आपके पुण्यप्रताप से ही हम आपकी सहायता के लिए आए हैं। देखो, धर्म की महिमा, **धर्म के प्रभाव से देव भी दास बनकर सहायता करते हैं**।

धर्म (का पालन) कल्पवृक्ष और चिंतामणि से भी उत्कृष्ट होता है, क्योंकि कल्पवृक्ष और चिंतामणि भोगों के पदार्थ दे सकते हैं, उनसे देवों की प्राप्ति नहीं हो सकती। उनसे मांगना पड़ता है, तब देते हैं, पर धर्म से देव प्राप्त होते हैं, देव दास बनते हैं। धर्म से मांगना नहीं पड़ता, पदार्थ स्वयं आकर सहायता करते हैं। यह सब धर्म का ही प्रभाव है।

उस देव ने लोगों से कहा–हे लोगों, देखो, धर्म के प्रभाव से हम लोग अपने स्वर्गादिक स्थान छोड़कर सहायता के लिए आये हैं। सुदर्शन की तरह आप भी भोगों का मार्ग छोड़कर धर्म के रास्ते पर चलो, मोक्ष की प्राप्ति होगी।''

धर्म और धर्मात्मा का सभी गुणगान करते ही हैं, सो देव ने भी किया।

उधर यह समाचार राजा तक पहुँचा तो राजा को पहले, तो भरोसा नहीं हुआ, फिर गुस्सा भी आया राजा फाँसीघर से महल पहुँच चुका था। फिर वह सोचने लगा कि सुदर्शन न केवल पापी कामी है, बल्कि यह तो बहुत बड़ा मायावी (जादूगर) भी है। लगता है कि इसने अपनी कला से जल्लादों को पत्थर जैसा बना दिया है और तलवार को माला में बदल दिया है। या किसी देव ने आकर ऐसा किया हो। जो भी हो। मैं वीर हूँ। राजा हूँ। मेरा धर्म है कि मैं अपने परिवार व प्रजा की रक्षा करूँ, मैं

सेना लेकर जाता हूँ। अभी सुदर्शन को या उसके सहायक को मजा चखाता हूँ।

राजा सेना लेकर गुस्से में भरकर वहाँ आया। राजा को सेना के साथ देखकर यक्षदेव ने भी ऋद्धि से सेना तैयार की। राजा से कहा–

हे राजन्! सुदर्शन शीलवान है। इसने अन्याय नहीं किया है, बल्कि यह धर्मात्मा है। आप इससे माफी मांगकर अपने पाप का प्रायश्चित करो।

पर राजा अभिमान में चूर था। उसने माफी मांगने की बजाय यक्ष से कहा–

हे देव, तेरे जैसे कई देवों को मैं अपना सेवक बना चुका हूँ तेरी क्या बिसात है? तू हमारे रास्ते से हट जा । इस पापी को मारने दे, नहीं तो तू भी मुझसे मारा जायेगा।

यक्ष–हे राजन्, मनुष्यों के मारने से देव नहीं मरते। हमारे पास ऋद्धियाँ होती हैं। चक्रवर्ती की सेना भी हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। एक हजार चक्रवर्तियों के जितना बल एक व्यंतर देव में ही होता है। मैं तो वैमानिक देव हूँ। मेरे सामने तुम्हारी सेना है ही कितनी–सी। तुम सीधे तरीके से सुदर्शन धर्मात्मा से क्षमा मांगो, नहीं तो मैं तो इसकी रक्षा के लिए आया हूँ। व्यर्थ में तुम्हारी सेना और तुम मारे जाओगे। हमें तो सिर्फ धर्म ही अपने वश में कर सकता है।

राजा–हे देव! आज तुम हमारी ताकत देखो। हम बहुत शक्तिशाली हैं। हमारे जैसा शक्तिशाली इस धरती पर दूसरा कोई नहीं है।

यक्ष–राजन्! **अभिमान विनाश का कारण होता है**। ठीक नहीं है कि अभिमान करो।

देव के बार–बार समझाने पर भी राजा धात्रीवाहन न समझा, न माना। वह अहंकारी था। उसका पतन तय था क्योंकि अभिमानी का सिर अंत में नीचा ही होता है। उसने देव को ललकारा। देव और राजा में युद्ध छिड़ गया।

राजा ने सारे प्रयास किए सब व्यर्थ गए। राजा एक बाण छोड़ता। यक्ष ऋद्धि के बल से चार बाण छोड़ता। राजा यक्ष का एक काटता। यक्ष ऋद्धि से कई सिर बनाता। यक्ष ने ऋद्धि से राजा के एक–एक कर सभी सैनिक धरती पर सुला दिये। राजा के रथ को तोड़ दिया। राजा को शस्त्ररहित कर दिया। अन्त में राजा से कहा–

हे राजन्! अब भी समय है। तुम धर्मात्मा सुदर्शन से माफी मांग लो, उनके चरणों में गिरकर प्रायश्चित करो तो जीवित रह सकते हो।

राजा ने सोचा मैं और सेना लेकर आऊँगा और इसे पराजित करके रहूँगा। यह सोचकर वह भागने लगा। परंतु यक्ष ने अपनी ऋद्धि से चारों ओर यक्ष ही यक्ष खडे कर दिए। यक्षों की भरमार देखकर बचने का कोई उपाय न जानकर धात्रीवाहन राजा सुदर्शन के चरणों पर गिरकर प्राणों की भीख मांगने लगा। उसे देवता की शक्ति का एहसास हो गया था, साथ ही यह भी पता चला कि सुदर्शन निर्दोष है। तभी तो यक्ष इसकी सहायता करने आया है। देव अधर्मी या कुधर्मी की सहायता नहीं करते। उसे अपनी शक्ति की कमी का भी पता चला। वह पश्चाताप करता हुआ सुदर्शन से बार–बार माफी मांगने लगा। कहने लगा–हे धर्मात्मा! मुझे माफ कीजिए, मेरे प्राणों की रक्षा कीजिए। मैं अपने जीवन की भीख मांगता हूँ।

सुदर्शन मौन थे। उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। वे अपनी आत्मा में लीन थे। आत्मध्यान में डूबे थे।

देवों ने पांच आश्चर्य दिखाये। सुदर्शन की जयजयकार की। उन पर फूलों की वर्षा की। दुन्दुभि बाजे बजाये। मन्द मन्द हवायें चलाईं। सुगन्धित जलवर्षा की।

यक्ष ने राजा की सारी सेना जीवित कर दी। वास्तव में सेना मरी नहीं थी। देव ने अपनी माया से उनको सुला दिया था। देव किसी को मारते नहीं, किसी की हिंसा नहीं करते। सिर्फ राजा की हिम्मत और अभिमान तोड़ने के लिए यक्ष ने यह सब किया था। सेना ने धर्मात्मा सुदर्शन की एक स्वर से जयकारे लगाईं।

सुदर्शन का उपसर्ग दूर हुआ। उधर रानी अभयमती को इस घटना का पता चला तो उसने अपनी बदनामी और भावि मौत के ड़र से फांसी लगा ली। मरकर वह पटना शहर के पास निर्जन वन में व्यंतरणी बनी।

अभयमती की धाय राजा के ड़र से चुपचाप भाग गई। भागकर वह पटना शहर में पहुँच गई। पटना में देवदत्ता नाम की एक वेश्या थी। वह उसके पास रहने लगी। धाय ने देवदत्ता वेश्या को सारी बाते बतायीं। देवदत्ता ने धाय से कहा–

अरी धाय, सुन कपिला हो या अभयमती , उनमें हम वेश्याओं जैसी पुरूषों को रिझानेवाली कलाएं कहाँ से होंगी? वह कपिला ठहरी साधारण स्त्री और अभयमती है सिर्फ राजा को रिझानेवाली रानी। हम वेश्याएँ हर पुरूष को रिझाने में समर्थ होती हैं। तू मेरा चमत्कार देख। मैं उसे मिनटों में रिझा दूंगी। जब उसे रिझाऊँगी तब तो मान

जायेगी कि सचमुच में वेश्याओं में अच्छे से अच्छे पुरूषों को रिझाने की कलाएं होती हैं।

इधर राजा धात्रीवाहन सत्य का सत्य जानने के बाद पवित्र हृदय से सेठ सुदर्शन से क्षमा याचना करते हुए कहने लगा–

हे पुरूषोत्तम, धर्मात्मा आप जगत्पूज्य हो, आप सचमुच पुण्यात्मा हों, इस धरती के आभूषण हो। हे क्षमासागर, क्षमा के भण्डार, मुझे क्षमा कर दीजिए। मैंने स्त्री के कहने मे आकर बिना विचारे घोर अपराध किया है। मैंने धर्म को कलंकित करने का प्रयास किया है, पर आप तो दिव्यमूर्ति धर्मस्वरूप हो। धर्म क्षमा करना सिखाता है, क्षमा तो वीरों का भूषण है। आप सर्वोत्कृष्ट वीर हो, मैं अपना आधा राज्य। आधा क्या? आप तो सम्पूर्ण राज्य स्वीकार कर मुझे अपना दास बना लीजिए। आपके संग से मेरा भी उद्धार होगा। मेरा उद्धार कीजिए।

सुदर्शन का ध्यान समाप्त हुआ उन्हों ने कहा–हे राजन! इसमें आपका कोई दोष नही था। मेरे ही उपार्जित पूर्व के पापकर्म का दोष था। मैंने पूर्व में किसी निरपराध पर आरोप किया होगा तभी तो निरपराध होते हुए भी मुझ पर आरोप लगे। जीव अपने ही कर्मों का फल भोगता है। अन्य को दोष देना, यह ना समझी है।

राजा– धन्य हो सुदर्शन सेठ! धन्य हो।

सुदर्शन– मेरा ही दोष था, तो क्षमा किस बात की? आप तो प्रजा के पालक हो। मैं प्रजा हूँ। इसलिए आप मेरे पिता समान हो। सत्पुत्र कभी स्वयं राजा बनना नहीं चाहता, बल्कि पिता को ही राजा देखना चाहता है। मैंने राज्य का फल आपके द्वारा देख लिया है। मुझे अपने

परिग्रह की भी चाह नहीं है? तो इतने बड़े राज्य वैभव की क्या चाह होगी? मैं अपने परिग्रह को छोड़कर दीक्षा लेना चाहता हूँ। आप सब मेरी अनुमोदना कीजिए।

धर्मात्मा सुदर्शन पुत्र सुकान्त को घर का अधिकार देकर जिनमंदिर गये। वहाँ **विमलवाहन** नाम के मुनिराज विराजमान थे। जिनदर्शन करके मुनिराज को नमस्कार कर मुनिदीक्षा के विचार लेकर मुनि विमलवाहन के सामने बैठ गये। मुनिराज से उपदेश सुनने के बाद पूछा–

हे तारणहार! किस कारण से मेरे हृदय में कमजोरी रही कि प्रेम का बन्धन तोड़ना चाहते हुए भी मनोरमा के प्रति मेरा प्रेम बना रहा, छूट नहीं पाया? तथा किस पुण्योदय से सुन्दर शरीर रूप–लावण्य प्राप्त हुआ? सम्पदाएं प्राप्त हुईं? हे नाथ कृपा करके बता दीजिए।

तब मुनिवर विमलवाहन ने बताना प्रारंभ किया। सुनो, महापुरूष, इसी भरतक्षेत्र में एक विन्ध्यदेश था, उस देश में **कौशल** नाम का एक सुन्दर नगर था। उस देश का राजा **भूपाल** था। भूपाल राजा की रानी का नाम **वसुन्धरा** था। उनके चतुर, बुद्धिमान **लोकपाल** नाम का पुत्र था।

राजा भूपाल प्रजा का हितैषी था। उसके राज्य में सर्वत्र शांति और आनन्द था। एक दिन कोई पुरूष राजा के महल के सामने आकर जोर–जोर से कहने लगा–हे देव, हे नाथ हमारी रक्षा कीजिए। हमारे प्राण बचाइए।

राजा ने उस पुरूष को दुःखी जानकर **मंत्री अनन्तबुद्धि** को बुलाकर पूछा– मंत्रीवर, इस व्यक्ति के दुःख के कारण का पता लगाकर बताइए?

अनन्तबुद्धि नाम के मंत्री ने उस पुरूष से मिलकर सारी जानकारी लेकर राजा से कहा–

हे महाराज! हमारे कौशल नाम के नगर की दक्षिण दिशा में विंध्यगिरि नाम का बहुत बड़ा पर्वत है। उस पर्वत पर एक महा बलशाली **व्याघ्र** नाम का भील रहता है। उसकी पत्नी का नाम करेंगी है। भील यथा नाम तथा गुण है। वह व्याघ्र (बाघ) के समान बड़ा ही क्रूर है। उसका भयानक विकराल रूप है। वह सदा धनुष लिए घूमता है। प्रजा को पीडित करता रहता है। उसके ह्रदय में दया नाम की वस्तु नहीं है। वह निर्दयी साक्षात् यम का दूसरा रूप है। उसके भय से हमारे नगर की दक्षिण दिशा की प्रजा सदा दुःखी रहती है। वह इनके घरों को तोड़ता है। उनका अनाज जला देता है। उनको पीटता है। तरह–तरह से दुःख देता है। उससे रक्षा के लिए यह आया हुआ है।

मंत्री की बातें सुनकर राजा ने तुरंत ही सेनापति को बुलाकर कहा–

उस व्याघ्र नाम के भील को पकड़ कर हमारे सामने प्रस्तुत करो।

सेनापति सेना लेकर गया। व्याघ्र नाम के भील ने अपनी सेना लेकर युद्ध किया और उस युद्ध में जीत हासिल की। हारा हुआ सेनापति राजा के पास गया। उसने राजा से कहा– वह व्याध्र भील बहुत बलशाली है। उसे हराना मुश्किल है।

राजा भूपाल– सेनापतिजी, उसे हराना मुश्किल हो सकता है, असंभव नहीं। मैं स्वयं युद्ध कर उसे पराजित कर बन्दी बनाकर लाऊंगा।

राजा युद्ध के लिए तैयार होने लगा। इतने में उसके पुत्र लोकपाल ने कहा–

पिताजी! मेरे होते हुए आप युद्ध मत कीजिए। मैं स्वयं युद्ध के लिए जाता हूँ। आप घर पर ही रहिए। मात्र मुझे आज्ञा दीजिए।

राजा– बेटा! तुम अभी बालक हो। मैं ही युद्ध के लिए जाता हूँ।

लोकपाल– यह ठीक नहीं है पिताजी कि पिता तो युद्ध के लिए जाये और बेटा घर में ही पड़ा रहे। आप हमें भी मौका दीजिए।

लोकपाल की जिद के कारण राजा भूपाल ने पुत्र को भेजा। लोकपाल सेना लेकर गया। उसने व्याघ्र भील से युद्ध किया। व्याघ्र भील को युद्ध में मार दिया।

व्याघ्र भील मरकर वत्स नाम के देश में एक छोटे से गांव में कुत्ते के रूप में जन्मा। जैसे भाव वैसी गति। व्याघ्र भील क्रूर परिणामवाला था, सो क्रूर स्वभाववाला मांसाहारी पशु बना कुत्ता मांस खानेवाला पशु है, उसे कितना भी दूध पिलाओं, वह मांस को पाकर दूध छोड़ देता है। मांसाहारी पशु को घर में नहीं पालना चाहिए। न किसी पक्षी को पिंजरे में कैद करके रखना चाहिए। जैसे भाव, वैसी गति– इस तथ्य को सदा याद रखना चाहिए।

वह कुत्ता व्याघ्र भील का जीव इधर–उधर दिन भर घूमता, कहीं कुछ खाने को मिलता खा लेता, पानी जैसा भी मिलता गंदा संदा सब पी लेता। जो भी रोटी दे, उसके पीछे हो लेता।

एक दिन एक ग्वालन ने उसे रोटी दी, उसने वह खा ली और वहीं उस ग्वालन के घर के सामने बैठा रहा। वह ग्वालन किसी काम से कौशाम्बी जानेवाली थी। उसने रोटियाँ बांध लीं, पोटली उठायी और चल दी। रोटियों की

खुशबू से रोटी की आस लिए वह कुत्ता ग्वालन के पीछे–पीछे चल दिया। वह ग्वालन अकेली थी, सो उसने सोचा इसका साथ भी ठीक ही रहेगा, इसलिए उसने उसे नहीं भगाया। बीच में ग्वालन ने रोटी खायी, तो उसे भी दी। इस तरह वह ग्वालन के साथ कौशाम्बी पहुँच गया। सुख में सब साथ होते हैं। चाहे वह पशु ही क्यों न हो? पर दुःख में अपना शरीर भी दुश्मन बन जाता है। ग्वालन के रिश्तेदार का घर जैनमंदिर के पास था, वहाँ दयालु लोग थे, वे उस कुत्ते को रोटियाँ डाल देते थे। गाँव से उस शहर में ज्यादा, पेटभर भोजन उसे मिलने लगा था, इसलिए ग्वालन के गाँव चले जाने के बाद भी वह तो वहीं रहा। रोटियाँ खाकर जैनमंदिर के पास रहने लगा। उसके कानों में मंदिर में होने वाली पूजा के दर्शन के, उपदेश के, णमोकार मंत्र के शब्द पड़ते। जिससे उसके परिणाम शांत रहने लगे। **जिनमंदिर के सानिध्य से पशु में इतना बदलाव आ जाता है, तो मनुष्यों में क्यों नहीं? इसलिए मनुष्य को घर बनाने से पहले मंदिर की दूरी देख लेनी चाहिए और मंदिर के समीप ही घर बनाना चाहिए।**

कुत्ते का सारा जीवन मंदिर के पास ही बीत गया और उसने वहीं आयु पूरी की। मरकर वह चम्पानगरी के सिंहप्रिय नाम के शिकारी के घर सिंहणी नाम की स्त्री के गर्भ से बालक के रूप में जन्मा। वहाँ उसका नाम लोध रखा। बालक लोध छोटा ही था, तब पाप के उदय से उसके माता और पिता दोनों की मृत्यु हो गई। लोध अनाथ हो गया। उसका कोई नजदीकी रिश्तेदार भी नहीं था। उसका दुर्भाग्य देखो, उसे ढंग से रोटी भी नसीब नहीं होती, पानी भी नहीं मिलता। लोध बीमार हुआ। उसे

सम्भालनेवाला कोई नहीं था, वह बीमारी में तड़प–तड़प कर मरा।

लोध मरकर उसी चम्पानगरी के एक ग्वाले के घर बालक के रूप में जन्मा। वहाँ उसका नाम सुभग रखा। सुभग का बचपन माता–पिता के लाड़–प्यार में बीता। जब वह पाँच छह साल का हो गया, तब वह माता–पिता के साथ जंगल में गाएं चराने जाता था। उसका समय जंगल में अच्छी तरह से बीतता था। उसे जंगल अच्छे लगने लगे। जंगलों में कषायों के निमित्त बहुत ही कम, नहीं के बराबर होते हैं। गाँव, शहरो में कषायों के निमित्तभूत पदार्थ सर्वत्र होते हैं। इसलिए बस्तियों में रहनेवालों की कषायें ज्यादा होती हैं, वन जंगलों में उसकी तुलना में बहुत कम होती हैं। इसलिए शास्त्रों में एकान्त का सेवन लिखा है, जो कषायों का नाश कराने में सहायक होता है। भीड़वाले स्थान की अपेक्षा एकान्त में कषायें कम होती हैं। सुभग दिन भर जंगल की खुली हवा में रहता। शाम को माता–पिता के साथ घर आता। उसके दिन आनन्द से बीतते थे। वह ग्यारह साल का हुआ, तब तन्दुरूस्त बड़ा दिखने लगा। उसके माता–पिता ने उसे वृषभदास सेठ की गायें चराने के लिए रखा। वह रोज सुबह उठकर सेठ वृषभदास की गायें लेकर चराने के लिए जंगल में जाता था। साथ में दोपहर की रोटी ले जाता था। नदियों का शुद्ध पानी पीता। सेठ वृषभदास जैनी दयालु स्वभाववाले व्यक्ति थे। सेठ की जिनमती नाम की पत्नी थी। वे सुभग का ध्यान रखते थे। उसे अच्छे–अच्छे कपड़े देते थे। खाना–पीना भी स्वादिष्ट बनाकर देते थे। उसके दुःख दर्द का ध्यान रखते थे। था तो वह नौकर पर उसे पुत्र की

तरह बल्कि पुत्र से बढ़कर मानते थे। सुभग भी उनका प्यार देखकर उन्हें ही अपना माता–पिता समझने लगा था। उन्हें माता–पिता कहकर ही पुकारता था। सेठ धर्मात्मा थे। इसलिए वे उस ग्वाले सुभग को भी धर्म की बाते सुनाने थे। धर्म की राह पर चलने की शिक्षा देते थे। सुभग को सेठ–सेठानी की धर्म की बातें अच्छी लगती थीं। वह धर्म का आचरण करता था। दिन में भोजन करना, छानकर पानी पीना, देवदर्शन करना ये उसने सीख लिया था। देखो, संगति का असर–कलाल के घर में बालक शराब पीने लगता है तो धर्मात्मा के घर मंदिर जाना सीख जाता है।

एक दिन वह रोज की तरह गायें लेकर जंगल में चराने गया था। आज उसके ऐसे पुण्य का उदय आया कि उसे ऋद्धिधारी दो मुनियों के दर्शन हुए। बिना विशेष पुण्य के मुनियों के दर्शन नहीं होते हैं। **आज चम्पानगरी के किसी भी व्यक्ति के ऐसे विशेष पुण्य का उदय नहीं था।** जिसे ऐसे ऋद्धिधारी महा मुनिवरों के दर्शन का लाभ मिला हो सुभग मुनिराजों को देखकर खुशी से उछल पड़ा। भक्ति के रस में नाचने लगा। दौड़कर मुनिराजों के पास गया। उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। उसे लगा–आज मुझे मेरे गुरुमहाराज के दर्शन हुए हैं, मैं महा महाभाग्यवान हूँ। यहाँ मैं अकेला ही भक्त हूँ, ये मेरे गुरू महाराज मेरे अकेले के ही हैं। वे माघ की कडाके की सर्दी के दिन थे। सर्दी परवान पर थी। मुनिवर ध्यान में लीन थे। वह उनके पास ही बैठा रहा। एकटक उनको निहारता रहा। उनकी परम शांत मुद्रा उसे इतनी भा गई कि उनको देख–देख वह थका नहीं। कब सूर्यास्त हुआ ? उसे पता नहीं चला। गायें अपने समय पर घर चली गई थीं। उसे गायों का भी ध्यान

नहीं रहा। वह मुनिराजों के पास ही बैठा रहा। रात हो गई। सर्दी बढ़ने लगी। सर्दी के प्रकोप से पानी की बर्फ जमने लगी। सुनिराजों के शरीर पर बर्फ के कण जमा हो गए। उसने अपने कोमल हाथों से उनके बदन से बर्फ के कणों को हटाया। उसे मुनिराजों के प्रति ऐसा भक्तिभाव उत्पन्न हुआ कि अपने शरीर पर जमे बर्फकणों की परवाह किये बिना वह मुनिराजों के शरीर पर जमें बर्फकणों को देखकर इस चिन्ता में डूब गया कि इनका यह दुःख कैसे दूर हो? वह सोचने लगा, अभी तो पूरी रात बाकी है। बर्फ और उसकी ठंड़क और बढ़ेगी। ये रातभर कैसे रहेंगे? इनकी रात कैसे बीतेगी? मैं इनको बर्फ और ठंड़क से कैसे बचाऊँ? यह सोचकर उसने लकडियाँ एकत्रित की और रातभर आग जलाकर मुनिराजों को सर्दी से बचाने का प्रयास करता रहा।

मुनिराजों को सर्दी, गर्मी से फर्क नहीं पड़ता। पर उनकी भक्ति से सुभग ग्वाले को अतिशय पुण्य का बन्ध हुआ। ऐसा करते हैं या नहीं उसे पता नहीं था, पर भक्तिवश उसने ऐसा किया था।

सुबह होने पर मुनिराजों का ध्यान टूट गया। उन्होंने सुभग को देखा। भव्य जाना। यह रातभर जगा। आग जलाता रहा। उसे सिर झुकाए बैठे देख, उसे नम्र स्वभाववाला जानकर धर्म का उपदेश दिया। देखो, वहाँ दो वक्ता और एक श्रोता। श्रोता भी ऐसा जो अनपढ़ तथा अबोध बालक, **सच्चा वक्ता भीड़ नहीं, भव्यता देखता है।**

भव्य जीव एक भी हो तो उसे उपदेश देता है। रेगिस्तान में लाखों लीटर पानी बहाने से अच्छा है, एक पौधे को एक लोटा पानी देना।

सुभग को आत्मकल्याण की शिक्षा देकर अन्त में कहा– हे बालक! छोटा या बड़ा, दिन या रात में कोई भी काम प्रारंभ करो, उससे पहले महामङ्गलकारी मङ्गलायतन स्वरूप इस णमोकार महामंत्र को अवश्य बोला करो, इस महामंत्र में कोई भांग नहीं है, मात्र निःस्वार्थ भावना से वीतरागियों को याद करना अच्छा होता है। इसमें नुकसान कणभर भी नहीं, बल्कि फायदा ही है, पुण्य का संचय होता है, भावों में विशुद्धि बढ़ती है। सुगति प्राप्त कराकर परम्परा से मोक्ष की राह दिखाता है।

सुभग ने मुनिराजों के सामने प्रतिज्ञा की कि महाराज, आपके वचनों का प्राणपण से पालन करूंगा। हर काम से पहले णमोकार मंत्र का उच्चारण कर वीतरागियों को अवश्य नमस्कार करूँगा। वे मुनिराज आकाशगामिनी ऋद्धि के द्वारा आकाश मार्ग से चले गए। सुभग रूकिए, रूकिए– कहता रहा।

सुभग ग्वाला अबोध था। उसे पक्का विश्वास हो गया कि णमोकार महामंत्र, है चमत्कारी, तभी तो इसके प्रभाव से वे आकाश में उड़ गए। उसने सोचा कि यदि मैं सदा इसका उच्चारण करूंगा, तो एक दिन मैं भी इनकी तरह आकाश में उड़ सकूंगा।

उसने उस दिन से णमोकार मंत्र का जाप श्वांस की तरह निरन्तर किया। चलते–फिरते , उठते बैठते हर काम से पहले णमोकार मंत्र बोलने लगा।

एक दिन सेठ वृषभदास ने उसके मुँह से बार–बार णमोकार मंत्र के उच्चारण को सुनकर पूछा–

बेटे, तुम हर काम से पहले णमोकार मंत्र को कब से बोलने लगे हो? यह तुम्हें किसने सिखाया?

सुभग ने ऋद्धिधारी मुनियों के दर्शन की सारी कहानी बतायी। सेठ को उस पर और अधिक प्रेम उमड़ा। उसे पास बिठाया कहा–

बेटा, तुम हमसे भी ज्यादा भाग्यशाली हों। हमें ऐसे गुरुवर के दर्शन दुर्लभ हैं, पर तुम्हें महाभाग्य से हुए है, उनका उपदेश मिला। जरूर तुम निकट भव्य, मोक्षगामी हो। उन्होंने उसे णमोकार मंत्र का विस्तार से अर्थ समझाया। नये कपडे, सोने चांदी के रत्नजड़े आभूषण दिये। उसका सत्कार किया। लोगों को बुलाकर उसकी प्रशंसा की।

सुभग अब विशिष्ट बालक बन चुका था। लोगों में उसका मान बढ़ा, प्रतिष्ठा बढ़ी। उसे देख उसके माता–पिता भी णमोकार मंत्र सीख गए। बोलने लगे।

सेठ उसे कुछ समय तो बेमन से गाये चराने के लिए भेजते रहे। उन्हें लगा–एक निकट भव्य जीव से गाये चरवाने का काम करवाना ठीक नहीं है। वह हमारा पुत्र बनकर हमारे घर में रहे। पुत्र का सुख भोगे। धर्मध्यान करे, दानादिक दे। उन्होंने उससे कहा–

बेटा! घर में ही रहो। गायें चराने के लिए किसी दूसरे आदमी की व्यवस्था कर देंगे।

सुभग ने कहा–

नहीं पिताजी! **कोई काम छोटा या बड़ा , अच्छा या बुरा नहीं होता है। सिर्फ देखने का नजरिया अलग– अलग होता है। निर्धन मनुष्य धनवान बनने पर मजदूरी आदि कार्यो को छोटा समझता है तो यह उसका गलत नजरिया है। काम छोटा या बड़ा नहीं होता, सोच ही छोटी या बड़ी होती है।** सोच में बदलाव हो तो सभी काम समान हैं। गायें

चराने के काम से ही तो मुझे मुनिराजों के दर्शन व धर्मलाभ हुआ है। मैं गायें चराने का काम न करता होता तो धर्मात्मा मुनिवरों के दर्शन कैसे होते? इसलिए मुझसे यह काम मत छुड़ाइए। मैं खुशी से यह काम करता हूँ। मुझे इसी काम में आनन्द आता है। मैं इस काम को नहीं छोडूंगा। उसने उसी काम में आनन्द माना और सेठ से कहा– पिताजी! यह काम मैं नहीं छोडूँगा। सेठ वृषभदास किंकर्तव्यमूढ से रहे।

सुभग रोज गायें लेकर चराने जाता था। एक दिन वह वृक्ष के नीचे बैठकर णमोकार मंत्र के जाप के साथ गुरू के दिये धर्मोपदेश पर चिंतन कर रहा था। इतने में जोर की वर्षा प्रारंभ हुई। गायें घर का रास्ता पकड़ कर घर चली गई। उसे उनका पता नहीं था। एक ग्वाले ने आकर उससे कहा–

अरे सुभग, तू तो यहीं बैठा है। तेरी गायें घर जा चुकी है। गंगा नदी में उफान बढ़नेवाला है, जल्दी आ जाना। मैं जा रहा हूँ। ग्वाला चला गया। सुभग भी घर जाने के लिए उठा। नदी के पास गया। देखा तो गंगा नदी उफान पर थी। शाम का समय होनेवाला था, उफान बढ़ न जाये, इसलिए उसने सोचा नदी को अभी पार करने में भलाई है, बाद में नदी का जलस्तर और प्रवाह की तेजी बढ़ जायेगी।

यह सोचकर सुभग णमोकार मंत्र का उच्चारण करते हुए नदी को पार करने के लिए नदी में कूद गया। नदी में उस स्थान पर ठूंठ था। वह ठूंठ उसके पेट में घुंस गया। वह ठूंठ बड़ा था। उसके पेट में घुसते ही सुभग की मृत्यु हुई। मरने से पहले उसने चाहा की कि णमोकार मंत्र और

अन्य पुण्य के फल में मैं वृषभदास सेठ का ही पुत्र बनकर जन्मूँ। तुम्हारी पुण्यभावना सफल हुई। तुम्हारा णमोकार मंत्र का जाप और अन्य धर्म भावनाएं सफल हुईं। तुम्हारी चाह सफल हुई। तुम सुभग का शरीर छोड़कर वहाँ सेठ वृषभदास के ही पुत्र बनकर जन्मे हो।

गुरूसेवा आदि पुण्य के कारण तुम्हें कामदेव के समान सुन्दर शरीर मिला है। मान, सम्मान, प्रतिष्ठा मिली है।

हे सुदर्शन ! देखो, विशेष ज्ञान नहीं होने पर भी धर्म भावना वैसी ही उत्तम फलदायक होती है, जैसे विशेष ज्ञान नहीं होन पर भी अमृत का सेवन उत्तम फल प्रदान करता ही है। विशेषज्ञान के साथ धर्माचरण मोक्षफल प्रदान क्यों नहीं करेगा? अवश्य करेगा।

विमलवाहन मुनि से णमोकार मंत्र की महिमा और उसका प्रत्यक्ष फल देखकर वहाँ उपस्थित लोगों की णमोकार मंत्र एव धर्म पर दृढ़ श्रद्धा हुई।

हे सुदर्शन! अब मनोरमा के प्रति तुम्हारे विशेष प्रेम का कारण सुनो–

जब तुम व्याघ्र नाम के भील थे। उससमय वह तुम्हारी केरंगी नाम की पत्नी थी। मरकर वह बनारस में एक ग्वाले के घर में भैंस बनी। उस भव में भूख–प्यास बीमारी से तड़प–तड़प कर मरी। मरकर कुछ पुण्य के उदय से चम्पानगरी में सांवल नाम के धोबी के घर उसकी यशोमती नाम की पत्नी से वत्सिनी नाम की पुत्री के रूप में जन्मी। उसके घर में दरिद्रता थी। अभक्ष्य का सेवन होता था। वहाँ उसका जीवन कष्टमय था।

एक दिन उसके पुण्य के उदय से उसे जैन साध्वियों के दर्शन हुए। अन्य महिलाओं के साथ बालिका वत्सिनी उनका सानिध्य प्राप्त करने के लिए गई। वहाँ अन्य महिलाओं के साथ आर्यिका से उपदेश सुना। उपदेश की समाप्ति के बाद भी वह वहीं बैठी रही। सत्संग पवित्र मन को भाता ही है। सभी महिलओं के जाने के बाद एकान्त में उसने आर्यिकाजी से पूछा–

हे माते! मेरे कष्टों के नाश का क्या उपाय है?

तब आर्यिकाजी ने कहा–

बेटी, तत्त्वज्ञान और धर्माचरण से कष्टों का नाश होता है। तुम तत्त्व का अभ्यास करो और व्रतनियमों का पालन करो।

वत्सिनी ने आर्यिका से अणुव्रत आदि धर्म के व्रत लिए। और उनका जीवन पर्यन्त निरतिचार पालन किया। समाधिमरण करके देह छोड़ी। देह छोड़कर इस चम्पानगरी में सागरदत्त सेठ के घर सागरदत्ता सेठानी के गर्भ से मनोरमा नाम की पुत्री के रूप में जन्मी।

पूर्वजन्मों के संस्कारों के कारण उसके प्रति तुम्हें तथा तुम्हारे प्रति उसे अनुराग है।

हे मनुष्यों! मैत्रीभाव या शत्रुता पूर्वजन्म के संस्कारों से होते हैं। संसार में न कोई किसी का मित्र होता है, न शत्रु होता है। हमारे पूर्व कर्मों या व्यवहारों से शत्रु, मित्र दिखते हैं, वे होते नहीं हैं। विमलवाहन मुनि से अपने पूर्व भवों को सुनकर सुदर्शन और मनोरमा दोनों का वैराग्य बढ़ गया, दृढ़ हो गया। सुदर्शन ने मुनि विमलवाहन से कहा– इस असार संसार से निकलने का रास्ता जो मुनिपद है, उसे प्रदान कर इस अनाथ को उपकृत कीजिए।

विमलवाहन जी ने सुदर्शन की पात्रता और इसी भव से निर्वाण (मोक्ष) पाने की योग्यता जान ली थी। इसलिए उन्होंने तुरंत ही उसे मुनिदीक्षा दी। जलती हुई अग्नि में ईंधन ड़ालने पर अग्नि और उग्रता से जलती रहती है, अग्नि ठंडी होने पर ईंधन काम नहीं करता। इसलिए समय रहते धर्ममय व्रतादिक धारण करने चाहिए।

सुदर्शन अब गृहस्थ नहीं रहे, पञ्च परमेष्ठी में शामिल हो गए। संयम–तप–त्याग ही नमस्कार योग्य, प्रातः स्मरणीय णमोकार मंत्र में स्थान दिलाता है। सुदर्शन सौम्यमुद्राधारी, समता के धनी, वीतरागी मुनि बन गए। वहाँ उपस्थित जनसमुदाय ने उद्घोष किया–108 श्री विमलवाहन मुनिराज की जय, 108 श्री सुदर्शन मुनिराज की जय।

उधर राजा धात्रीवाहन को भी संसार से वैराग्य हुआ। उन्होंने अपने पुत्र को राज्य देकर एवं सुदर्शन के पुत्र सुकान्त को राजश्रेष्ठी का पद देकर विमलवाहन मुनि से दीक्षा ली। मनोरमा ने आर्यिकाजी से आर्यिका दीक्षा ली।

सुदर्शन आदि मुनि अपनी आत्मा के आश्रय से रहने लगे। आत्मा में विचरण करने लगे तथा कठोर से कठोर तप करने लगे। निरतिचार धर्मसेवन करते हुए वन, उपवन में विहार करने लगे।

अनेक देशों में, अनेक स्थानों पर विहार करते हुए सुदर्शन मुनि पटना नगर के उद्यान में ठहरे थे। मुनि, पानी एक जगह ज्यादा देर ठहरें तो स्वाद (धर्म) से बिगड़ जाते हैं। इसलिए मुनि सदाविहारी ही अच्छे होते हैं। विहार करते सुदर्शन मुनि निर्जन स्थान में ठहरते थे। उस दिन वे पटना नगर के एक निर्जन उद्यान में ठहरे थे। जब वे आहार के

लिए पटना शहर में आये। अभयमती की धाय जो चम्पापुर से भागकर पटना आकर देवदत्ता वेश्या के पास रह रही थी। उसने सुदर्शन को पहिचान लिया था। उसने झट से देवदत्ता वेश्या के पास जाकर कहा–

हे स्वामिनी, जिस सुदर्शन की चर्चा मैंने पहले बतायी थी, वह कामविजयी वीर सुदर्शन मुनि बनकर आहार के लिए इधर ही आ रहे हैं। तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा तो याद है।

देवदत्ता वेश्या बड़ी चालाक थी, सो उसने बिना देर किए धाय से कहा–हे धाय, समय मत गँवाओ। तुरन्त श्राविका का भेष बनाकर द्वार पर खड़ी हो जाओ। सुदर्शन मुनि को जैनविधि से पड़गाहन कर शीघ्र भीतर ले आओ।

धाय भी चतुर चालाक थी। उसने तुरंत कृत्रिम श्राविका का भेष बनाया। दरवाजे पर खड़ी हो गई। इतने में सुदर्शन मुनि वहाँ से निकल रहे थे। उसने उनका नवधा भक्ति से (नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, अत्र, अत्र, अत्र, तिष्ठ, तिष्ठ, तिष्ठ, मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि, आहारशुद्धि, जलशुद्धि, कहकर) पड़गाहन किया। तीन प्रदक्षिणा देकर मुनिराज को गृहप्रवेश कराया। मुनि तो समता के धनी होते हैं। उन्हें दुनिया के छल प्रपञ्चों का क्या पता? वे न छलप्रपञ्च करते हैं न किसी को छली प्रपञ्ची देखते हैं। उनका मन निर्मल जल जैसे स्वच्छ होता है। भीतर ले जाकर सुदर्शन मुनि को उच्चासन पर बैठने का निवेदन किया। **मुनि सुदर्शन उच्चासन पर बैठ गए।** उसी समय देवदत्ता वेश्या वहाँ आ गई। मुनिराज के पास ही दूसरे पट्टे पर बैठ गई। दरवाजा बंदकर दिया। उस समय पाप की मूर्ति बनी देवदत्ता ने सुदर्शन मुनि से

कहा–हे महाराज! कामदेव के समान आपके सौन्दर्य को देखकर मेरे मन में एक काम इच्छा की आनन्दमय धारा बह रही है। आप सबके दुःख दूर करने वाले हो , मेरी इच्छा शांत कर मेरा दुःख दूर कीजिए। मैं अपने आपको विश्वसुन्दरी समझती थी, पर आपको देखकर मेरा भ्रम दूर हो गया। आप जैसा सुन्दर रूप इस दुनिया में दूसरा नहीं हो सकता।

हे सुदर्शन, मुनिपद छोड़कर मेरे साथ रमण करो। मैं पूरे जीवन भर आपकी दासी बनकर खूब सेवा करूँगी।

वासनायें छल चापलूसी करवाती हैं। वासना न त्यागी को देखती है, और न विरागी को ।

देवदत्ता वेश्या कुछ देर तक अनुनय विनय करके वासना की भीख मांगती रही। वासनाशून्य व्यक्ति दूसरे की वासना की पूर्ति कैसे कर सकता है? इसलिए देवदत्ता की अनुनय–विनय सब व्यर्थ गईं।

सुदर्शन, उपसर्ग जानकर मौन हो गए। उन्होंने अपनी आँखें बंदकर लीं। आत्मध्यान में लीन हो गए। तत्त्वचिंतन के सागर में डूब गए। वैराग्यजल से नहाने लगे। अन्य उपाय समाप्त होने पर **ध्यान और मौन दो ही अंतिम उपाय होते हैं**। सुदर्शन मुनि के ध्यानमग्न होने पर उन्हें बाहर की दुनिया की खबर ही नहीं थी। पर वेश्या पर तो काम का भूत सवार था। **अज्ञानदशा में हर विकार भूत बन जाता है।** देवदत्ता वेश्या ही थी। उसे धर्म–अधर्म से क्या लेना देना? उसे तो सिर्फ काम ही दिख रहा था। उसने सुदर्शन मुनि को रिझाने के प्रयास किए। सुमेरू प्रलयकाल की हवाओं से नहीं हिलता, सामान्य हवाओं से कैसे हिलेगा? देवदत्ता ने हर प्रकार से प्रयास किए। उसने

कामुक शब्दों से भरे गीत गाए। अनेक भाण्डवचन कहे, पर वैराग्य कभी राग से हार मानता है? तृष्णा कभी धर्म को जीत पाती है?

उस वेश्या ने अनेक प्रयत्न किए। सुदर्शन मुनि ने एक ही प्रयत्न किया वह था, धर्म पर रहने का।

देवदत्ता ने सुदर्शन मुनि को पलंग पर पटका। पर वे तो काठ की मूर्ति जैसे बन चुके थे। उसने अनेक अंग उपांगों के साथ कुचेष्टाएं कीं। उनके शरीर को नोंचा, खरोंचा। देवदत्ता का कामभाव बढ़ रहा था, इधर मुनिराज का वैराग्य बढ़ रहा था। काम में असफल देख उसका क्रोध बढ़ गया। उसने तरह–तरह से उनके शरीर को मरोड़ा, हाथ–पैरों को नाखुनों से नोंचकर लहुलुहान कर दिया।

उसने मुनि सुदर्शन पर तीन दिन, दो रात तक घोर उपसर्ग किया। अन्त में पाप ही हार गया। धर्म की जीत हुई। कामदत्ता हार गई। वह मुनि को ध्यानसे विचलित नहीं कर पाई।

तीन दिन बीतने के बाद उसने सोचा– इसे घर से बाहर कैसे ले जाऊँ? तीसरे दिन रात गहरी होने के बाद मुनि को कन्धे पर रखकर श्मशान में ले गई। वहाँ उन्हें खड़ा रखकर घर आई। सोचने लगी कि चाण्डाल इससे कर मांगेगा। यह चुप रहेगा। यह चुप रहेगा तो चाण्डाल इसे पीटेगा। तब इसकी अक्ल ठिकाने आयेगी।

थकी हारी देवदत्ता घर आकर विचार करने लगी। यदि उस मुनि ने कोई शाप दिया तो? वह साधु तपस्वी है, उसके शाप से मैं भस्म हो गई तो? वह शाप के ड़र से धाय को साथ लेकर सुदर्शन मुनि से अपने कुकृत्यों की क्षमा मांगने के लिए श्मशान में लौट आई। वहाँ उसने मुनि

को ध्यानस्थ देख वहीं ठहरने का निर्णय किया तथा इनसे क्षमा करवाकर ही जाने का निर्णय किया। वह रातभर मुनि के पास ही रही।

सुबह हुई। उपसर्ग दूर होने पर मुनिराज का ध्यान टूटा। उपसर्ग के बाद उनका वीतरागी सौम्यभाव कुंदन की तरह और अधिक चमकने लगा।

देवदत्ता ने और धाय ने नमस्कार किया। हे शील शिरोमणि! हमें क्षमा कर दीजिए। घोर अज्ञान में हमसे बहुत बड़ी गलती हुई है। हमारे इन दोषों के शुद्धिकरण हेतु प्रायश्चित्त दीजिए। हमें ऐसा ज्ञान दीजिए जिससे भविष्य में ऐसी भूले न हो। आप शरण में आनेवाले का उद्धार करते हैं, हमारा उद्धार कीजिए। संसार का नाश कराने वाली दवाई और विधि सिर्फ आपके पास ही है। हमें बताइए कि हम क्या करें? जिससे हमारे भाव शुद्ध रहें, क्रियाएं, भावशुद्धि का कारण बनें! नाथ, हमें क्षमा कर, सच्चे सुख का उपाय बताइए।

अहो, **भाव बदलने पर दुनियाँ ही बदल जाती है। अपनी गलती मानने पर भाव कुछ और होते हैं, दूसरे की गलती मानने पर कुछ और। दुनियाँ सिर्फ भावों की है, सोच की है, विचारों की है।** देवदत्ता और धाय दोनों के विचार बदल गए, उनकी दुनिया ही बदल गई। जिस मुनि को दुष्ट समझ रही थी, वे धर्मात्मा महापुरूष दिखने लगे, यह सब भावों का ही कमाल है। भाव बदलो, दुनिया बदली–बदली नजर आयेगी।

कोई व्यक्ति पापी या धर्मात्मा नहीं होता है। भाव ही पापी, धर्मात्मा होते हैं। जब तक मन में पाप का भाव है, तब तक पापी और जब तक धर्म का भाव तब तक धर्मात्मा कल तक पाप के भाव थे तो देव**दत्ता** और धाय पापी जीव थे, अब धर्म के भाव हो गए तो धर्मात्मा बन गई। भाव के

बदलने पर चोर अंजन, निरंजन बन जाता है, (चोर) विद्युच्चर सिद्धगतिचर बन जाता है। पशु से परमेश्वर तथा नर से नारायण भाव शुद्ध होने पर बनते हैं। अतः भाव शुद्धि के लिए सतत प्रयत्न करना चाहिए।

समता के धनी धीर वीर परम शान्त मुनिवर सुदर्शन ने उन दोनों को परम हितकारी उपदेश देते हुए कहा–

हे जीवों, धर्म ही शरण है। विकारों में सदा नीचे देखना पड़ता है। कषायों से ही जीव दुःखी रहता है। **विकार नष्ट हो जायें तो जीव स्वभाव से सुखी है, सुख ही पाता है।** विकारों में जीव आत्महित का विचार नहीं करता, कषायों के कारण आत्महित के विचार उत्पन्न नहीं होते हैं। भावना सदा ऐसी हो कि

"आतम के अहित विषय–कषाय इनमें मेरी परिणति न जाये" आत्मानुभव करने में ही जीव का हित है। अपने आपमें रहने में ही कल्याण है। शुद्धभावों में ही मंगल है।

चिर भजे विषय कषाय, त्याग अब, निज पद बेइए।
जीव, समझ सुन चेत सयाने काल वृथा मत खोए।
यह नर भव फिर मिलन कठिन है जो सम्यक् नहीं होए।।

जो हो चुका, उसे भूल जाओ। उसमें मेरी ही गलती थी। मैंने किसी जीव को कभी ऐसे दुःख दिए होंगे सो उसका फल मुझे मिला। इससमय समता भाव के कारण मेरे कर्मों की निर्जरा हुई। नये कर्मों का बन्ध नहीं हुआ। जो कर्म लम्बे समय तक फल देते, वे आपके उपसर्ग के कारण जल्दी नष्ट हुए। इस दृष्टि से आप मेरी मित्र हो, उपकारी हो। शत्रु नहीं हो। **संसार में कोई किसी का मित्र नहीं, कोई किसी का शत्रु नहीं होता। अपने पूर्वकर्म ही शत्रु, मित्र दिखाते हैं, परन्तु हमें तो किसी को शत्रु या मित्र नहीं देखना चाहिए।**

अन्य व्रतादिक का उपदेश दिया। जिसे सुनकर **देवदत्ता** और धाय के विचार, व्यवहार बदल गए। उनकी आत्माएं तृप्त हो गईं। उन्होंने दुराचार का मार्ग छोड़कर सदाचार अंगीकार किया। **सत्संगति सदा अच्छे फल ही प्रदान करती है।** देवदत्ता और धाय व्रतादिक धारण कर घर गई।

सुदर्शन मुनि अपने ध्यानादिक में लीन हुए। उससमय धात्रीवाहन राजा की रानी अभयमती जो फाँसी पर लटक कर मरकर व्यंतरणी बनी थी, वह विमान में बैठ़कर कहीं जा रही थी। उसका विमान मुनिराज सुदर्शन के ऊपर से जाते समय रूक गया था। चरम शरीरी मुनि के ऊपर से जाते समय रूक गया था। **चरम शरीरी मुनि के ऊपर से (किसी भी) देवता का विमान नहीं जा सकता।** विमान को रूका देख वह आश्चर्य से चारों ओर देखने लगी। उसे मुनि सुदर्शन दिखे। पहिचान लिया कि यह वही सुदर्शन है, पूर्व में जिसने मेरी इच्छा पूरी नहीं की। इसी के कारण मुझे फाँसी पर लटकना पड़ा। उसे गुस्सा आया। विमान को नीचे उतार कर विमान से उतरी। तीव्र कर्कश स्वर से बोली–

रे सुदर्शन! तेरे कारण मुझे कुमरण करना पड़ा। उसी कुमरण के कारण व्यंतरणी बनना पड़ा।

मैंने पहले भी एकबार तुझे परेशान करना चाहा था, उससमय तो तेरे रक्षक देव ने आकर के तुझे बचा लिया, पर आज देखती हूँ, तुझे मुझसे कौन बचायेगा?

पहले तो उसने भयानक, विकराल रूप बनाकर मुनि सुदर्शन को ड़राना, (ध्यान से) ड़िगाना चाहा। पर सुदर्शन मुनि जब टस से मस नहीं हुए। तब उसने दुगुने क्रोध से कुशब्द कहते हुए उनके शरीर को नखों और दांतों से चीरना प्रारंभ कर दिया। उठाकर पटकना शुरू किया।

अनेक शारीरिक कष्ट देना प्रारंभ किए। तभी देवताओं के आसन हिले। जिस देव ने आकर धात्रीवाहन राजा से बचाया, उस देव ने अवधिज्ञान से जान लिया, उसी धर्मात्मा सुदर्शन मुनि पर धात्रीवाहन राजा की पत्नी अभयमती मरकर व्यंतरणी बनकर प्रतिशोध की भावना से उपसर्ग कर रही है। वह देव तुरंत आया। आकर उसने व्यंतरणी से कहा—

हे देवी, महात्माओं को कष्ट नहीं देते। वे सबके कष्ट दूर करनेवाले होते हैं। कष्टों को नष्ट करनेवालों को कष्ट देना सही नहीं है। बल्कि उनकी सेवा कर अपने को कष्टों से बचाने वाले पुण्य का संचय करना चाहिए। उनके मार्ग पर चलकर अपना हित साधना चाहिए।

इनकी विराधना करने से इनको कष्ट देने से कष्ट पहुँचाने वाले जीव नरक में अनन्त कष्ट भोगते हैं। वे तो अपनी साधना करते हैं। उनके तो कर्म की निर्जरा हो रही है, पर तुम्हारे तो तीव्रपाप का बन्ध हो रहा है। इसलिए यह उपसर्ग बन्द कर दो। यक्षदेव की वह शिक्षा उसे नहीं सुहाई। सांप को दूध पिलाने पर वह जहर का ही कार्य करता है। व्यंतरणी ने पुनः उपसर्ग करना प्रारंभ चाहा। तब उस देव ने अंतिम चेतावनी के रूप में कहा—

देवी! जाओ, नहीं तो मुझे तुमसे युद्ध करना पड़ेगा। देव (पुरूष) के द्वारा महिला (देवी) के साथ युद्ध ठीक नहीं माना जाता।

व्यंतरणी पर क्रोध का भूत सवार था। उसने और तेजी से उपसर्ग प्रारंभ कर दिया। तब देव ने उस व्यंतरणी के साथ युद्ध प्रारम्भ कर दिया।

उन दोनों में भयङ्कर युद्ध हुआ। उनका युद्ध लगातार सात दिन तक चला। अन्त में परेशान, परास्त होकर वह देवी वहाँ से चली गई। यक्ष विजयी हुआ। उस

देव ने मुनि सुदर्शन की स्तुति की, उन्हें नमस्कार कर भक्ति की।

उस समय सुदर्शन मुनि आत्मध्यान के द्वारा कर्म नष्ट करते हुए आत्मस्वरूप में लीन थे। उनके घतिया कर्म नष्ट हुए, उन्हें अनंत सुख, अनंत दर्शन , अनंत वीर्य और अनंत ज्ञान (केवलज्ञान) की प्राप्ति हुई। उनका बाह्य शरीर परम औदारिक बना। वह शरीर धरती से 500 (पाँच सौ) धनुष ऊपर जाकर आकाश में निराधार गुब्बारे की तरह स्थिर हो गया। वे साधु परमेष्ठी से अरहन्त परमेष्ठी बन गए। यक्ष देव ने जय जयकार की कि– अरहन्त परमेष्ठी की जय, सुदर्शन भगवान की जय।

उसी समय सुदर्शन भगवान के केवलज्ञान की प्राप्ति के कारण देवों के विमानों में घंटानाद हुआ। इन्द्र ने अवधिज्ञान से जान लिया कि मुनि सुदर्शन को केवलज्ञान प्रकट हुआ है, वे अरहन्त भगवान बन गए। उन्होंने "सुदर्शन भगवान की जय, सुदर्शन भगवान की जय" इस प्रकार सुदर्शन भगवान की जय जयकार करके सात कदम आगे जाकर वहीं से सुदर्शन भगवान को नमस्कार किया। और कुबेर को गंधकुटी बनाने का आदेश दिया।

कुबेर ने सुदर्शन भगवान की स्वर्णमय गंधकुटी बनायी। उसे रत्नमय ध्वजा, सिंहासन, छत्र, चंवर आदि से अलङ्कृत किया।

स्वर्ग आदि से देव आये। इन्द्र आये। उन्होंने सुदर्शन भगवान के केवलज्ञान का उत्सव मनाया। देवों ने सुदर्शन भगवान की तीन–तीन प्रदक्षिणाएं दीं। भक्ति की। उनकी स्तुति की। गुणानुवाद किया।

उसी समय आत्मस्वरूप में लीन भगवान सुदर्शन के शेष रहे अघातिया कर्म नष्ट हुए। इस प्रकार भगवान सुदर्शन सिद्ध बन गए। सिद्ध परमेष्ठी बन गए। मुक्तिरमा

के नाथ, मुक्तिनाथ बन गए। उनके संसार का अभाव हुआ। देवों ने उसी समय उनका निर्वाण कल्याणक मनाया। उनका शरीर कपूर की तरह बिखर गया। उनके नख, केश को हवा में ही झेलकर पुनः कृत्रिम शरीर की रचना की। रत्नों से अग्नि उत्पन्न कर उस शरीर का अग्निसंस्कार कर राख को आदर के साथ समुद्र में प्रवाहित कर दिया।

सुदर्शन चौथे काल के पांचवें अन्तःकृत केवली बने थे। प्रत्येक तीर्थंकर के काल में सुदर्शन जैसे नियम से दस अन्तःकृत केवली होते हैं, जिनका वर्णन अन्तःकृददशांग नामके जिनवाणी के बारह अंगों में से आठवें अंग में है। इस अंग के 23,28,000 पद होते है। अपूर्व पुरूषार्थ से उपसर्ग पर विजय पाकर केवलज्ञान और मोक्ष पानेवाले पांचवें अन्तःकृत केवली सुदर्शन भगवान के जयनाद के साथ देव अपने–अपने स्थान पर गए।

सुदर्शन पटना से मोक्ष गए। सिद्धभगवान बने हैं, इसलिए पटना का वह स्थान सिद्धभूमि, सिद्धक्षेत्र बन गया है।

श्री सुदर्शन के साथ धात्रीवाहन राजा आदि अनेक मनुष्यों ने दीक्षाएं ली थीं। उनमें से अनेकों ने मोक्ष प्राप्त किया। अनेक स्वर्ग गए। मनोरमा आदि ने व्रत, नियमों के पालन से स्त्रीपर्याय का नाश कर सौधर्म से अच्युत स्वर्ग में ऋद्धिधारी देवपद प्राप्त किया। उन सब श्री सुदर्शन आदि सिद्धपरमेंष्ठियों को हमारा नमस्कार हो। बारम्बार नमस्कार हो।